स्कूल ऑफ इवेन्जलिज़म

कलीसिया वृद्धि के लिये

महान आदेश की बाइबल आधारित नींव

COPYWRITE 2017- EDUCATIONAL RESOURCES
PERMISSION TO FREELY COPY AND DISTRIBUTE, BUT PLEASE CREDIT SOURCE

पाठ्यक्रम सारांश

महान आदेश की बाइबल आधारित नींव

अनन्त जीवन का ईश्वरीय प्रस्ताव अर्थात वह सुसमाचार जिसका हम प्रचार करते हैं, उसकी विस्तृत रूप से जांच की गई है, मात्र यह आश्वस्त करने के लिये नहीं कि प्रत्येक विद्यार्थी सुसमाचार प्रचार और कलीसिया स्थापना के लिए धर्मज्ञानसंबंधीत ठोस आधार को रखे, परन्तु इसलिए भी कि प्रत्येक विद्यार्थी सुसमाचार के संदेश से इतना अधिक भरपूर और विस्मित हो जाये कि वह हर एक स्थान में जाकर लोगों को, अब तक के संसार पर प्रगट किये गये सब से उत्तम समाचार को बताने की इच्छा करेगा/करेगी।

ईकाई	पाठ
1. परिचय	पाठ्यक्रम सारांश तथा मिशन कथन
2. परमेश्वर और मिशन	परमेश्वर का मिशनरी हृदय
3.	परमेश्वर का मिशनरी पुत्र-1
4.	परमेश्वर का मिशनरी पुत्र-2
5.	परमेश्वर का मिशनरी आत्मा-1
6.	परमेश्वर का मिशनरी आत्मा-2
7.	परमेश्वर के मिशनरी लोग
8.	परमेश्वर का राज्य
9. कलीसिया और मिशन	परमेश्वर की मिशनरी कलीसिया
10.	परमेश्वर की मिशनरी कलीसिया का सदस्य
11.	परमेश्वर का महान आदेश
12.	मत्ती 28:19-20 में दिया गया महान आदेश
13.	कलीसिया स्थापना का बाइबलीय आधार
14.	परमेश्वर की योजना: कलीसिया बढ़ती जाये
15. शिष्य और मिशन	परमेश्वर का मिशन: सभी बचाए जायें
16.	प्रेरित पौलुस की मिशनरी पद्धतियाँ
17.	सताव और महान आदेश

18. सताव और महान आदेश
19. सताव और महान आदेश
20. मसीह के शिष्य का चिन्ह-1
21. मसीह के शिष्य का चिन्ह-2
22. यीशु मसीह का खरा शिष्य - 1
23. यीशु मसीह का खरा शिष्य - 2
24. युक्तिपूर्वक प्रार्थना और मध्यस्थता-1
25. युक्तिपूर्वक प्रार्थना और मध्यस्थता-2
26. युक्तिपूर्वक प्रार्थना और मध्यस्थता-3
27. मिशन के लिए परमेश्वर द्वारा सुसज्जित किया जाना
28. सुसमाचार संदेश को प्रासंगिक बनाना
29. मूल-निवासियों में नेतृत्व विकास
30. नेतृत्व योग्यताएं और विकास
31. शिष्यों के लिए परमेश्वर की प्रतिज्ञाएं
32. विश्वासी की पवित्रता: परमेश्वर की मीरास -1
33. विश्वासी की पवित्रता: परमेश्वर की मीरास -2
34. विश्वासी की पवित्रता: परमेश्वर का वरदान
35. पवित्रता: परमेश्वर की बुलाहट
36. महान आदेश और मसीह की वापसी

पाठ 2

परमेश्वर का मिशनरी हृदय

i. **परिचयः** परमेश्वर को मानवजाति से प्रेम है और उसने, अदन की वाटिका में आदम और हव्वा के साथ सहभागिता टूट जाने के बाद से ही, उनसे मित्रता और सहभागिता स्थापित करने के तरीकों का आरंभ कर दिया था। संपूर्ण मानव इतिहास में परमेश्वर मानवजाति तक एक मिशनरी हृदय के साथ, पापी लोगों को प्रेम करते हुये और हमें फिर से पवित्र बनाने का मार्ग निकालने के तरीके के साथ पहुंचता रहा है ताकि हम उसकी उपस्थिति में आ सकें। परमेश्वर ने, जो संसार की सच्ची ज्योति है, लोगों को अपने लिए छुड़ा लेने का मार्ग आरंभ ही से बना लिया था।

ii. परमेश्वर का एक मिशनरी कार्यक्रम है। रोमि. 9-11

क. परमेश्वर ने संसार, सृष्टि और इसमें की प्रत्येक वस्तु को बनाया, और अपनी सृष्टि, आदम और हव्वा, के साथ प्रतिदिन सहभागिता और मित्रता करता था। उत्प. 1:1-31

1. ऐसी कोई भी व्यक्ति या संस्कृति नहीं मिली है जिसमें कोई धार्मिक मान्यता या अंधविश्वास न हो। यह बात इस तथ्य का अनिवार्य प्रतिबिम्ब है कि इस संसार और संपूर्ण सृष्टि को परमेश्वर ने ही बनाया था।
2. उसकी खोज करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसका अस्तित्व स्पष्ट है।

ख. परन्तु आदम और हव्वा ने परमेश्वर के विरुद्ध पाप किया और अपने लिए परमेश्वर की मित्रता और सहभागिता में बने रहना असंभव बना दिया। उत्प. 3, रोमि. 3:23, रोमि. 6:26

1. आदम और हव्वा के पाप के कारण संसार में मृत्यु आई। रोमि. 5:12
2. परमेश्वर ने जातियों को अंधकार में रहने के लिये छोड़ दिया। रोमि. 1:24, 26, 28

ग. परमेश्वर अपनी सृष्टि को छुड़ाने के लिए पृथ्वी पर आया। उत्प. 3:15 में हम निम्नलिखित सच्चाइयों को देखते हैं:

1. उद्धार का आरंभ परमेश्वर ने किया (''मैं बैर उत्पन्न करूंगा'')।
2. उद्धार शैतान का नाश करेगा (''वह [यीशु] उसकी [शैतान की] एड़ी को डसेगा'')।
3. उद्धार संपूर्ण मानवजाति को प्रभावित करेगा।
4. उद्धार एक मध्यस्थ (यीशु) के द्वारा मिलेगा जो मानवजाति से संबंधित होगा।
5. उद्धार के लिए उस मध्यस्थ को दु:ख उठाना होगा।
6. जिस तरह से पतन इतिहास का एक भाग था, वैसे ही उद्धार को भी इतिहास में अनुभव किया जाएगा।

घ. परमेश्वर निरंतर मनुष्य के हृदय को पाने की खोज में रहता है, हम तक एक मिशनरी हृदय के साथ पहुंचता है ताकि अपनी सृष्टि को पुन: अपने साथ मित्रता और सहभागिता में ले आये। रोमि. 8:39, इफि. 2:4

iii. परमेश्वर तीन-में-एक (त्रिएक परमेश्वर) है क्योंकि वह तीन ''व्यक्ति'' (त्रिएकता) है, इसलिए वह आपसी संबंध में रहता, और उन मानवों के साथ भी संबंध बनाना चाहता है जो उसके हाथों की महान रचना है और जिनसे वह अलौकिक प्रेम से प्रेम करता है। यूह. 3:16-17

iv. परमेश्वर जगत की ज्योति है। यूह. 8:12

क. वह भस्म करनेवाली आग है। (वह अगम्य, असीम, अपरिवर्तनीय, पवित्र है) व्यवस्था. 4:24 इब्रा. 12:29

ख. अंधकार परमेश्वर को छिपा नहीं सकता, क्योंकि उसकी ज्योति भेदने वाली, सूक्ष्म तह तक जाने वाली, तीव्र और जान डालने वाली है। वह समस्त अंधकार पर प्रबल होता है। यूह. 1:5

ग. परमेश्वर, शत्रु अर्थात् शैतान के कार्य को नष्ट करता है। 1 यूह. 3:8

घ. परमेश्वर की ज्योति जो उसके बच्चों में है, वह चमकने के लिए है ताकि दूसरे उसे देखें। मत्ती 5:14

ड. हमारी ज्योति, हमारे दोषरहित जीवनों के द्वारा चमकनी चाहिये। फिलि. 2:15

v. परमेश्वर चाहता है कि हम उसकी आराधना और स्तुति करें, और वह इसके योग्य है।

क. वह हमसे ऐसी आराधना चाहता जो आत्मा और सच्चाई से की गई हो, और ऐसी ही आराधना को वह ग्रहण करता है, क्योंकि उसके साथ सहभागिता करने का यह सब से उपयुक्त ढंग है–उसके पास जाने के

लिये हम में ऐसी ही मनोवृत्ति होनी चाहिये। प्रका. 5:7-13

ख. अन्य देवताओं की आराधना करना मना है। व्यवस्था 4:39, निर्ग. 20:2-6

निष्कर्ष

1. परमेश्वर एक जीवित, व्यक्तिगत ईश्वर है। यशा. 43:3-15
2. परमेश्वर आपसी संबंध रखने वाला ईश्वर है। 1 यूह. 4:8
3. परमेश्वर इस पृथ्वी पर आया ताकि अपनी सृष्टि तक उद्धार ले आये। यूह. 3:16, रोमि. 5:8
4. परमेश्वर इस खोज में रहता है कि स्त्रियों और पुरुषों अपने उद्धार और प्रेम में बचा ले। लूका 19:10
5. परमेश्वर हमें, अर्थात् उसकी सन्तानों को, इस संसार में उसके राजदूत बनाना चाहता है ताकि हम खोए और भटके हुओं को उसके प्रेम और उद्धार के बारे में बताएं और उसके लिए आत्माओं को जीत लें। 2 कुरि. 5:20, नीति. 11:30

पाठ 3

परमेश्वर का मिशनरी पुत्र–1

i. **परिचयः** परमेश्वर ने अपने पुत्र को जगत का उद्धारकर्ता होने के लिये भेजा। 1 यूह. 4:14

ii. यीशु ने हमारे पापों का दण्ड चुकाने के लिये अपना प्राण दिया। यूह. 3:16, यूह. 10:17-18

क. यह उसका स्वेच्छा से किया गया कार्य था। 2 कुरि. 8:9

ख. यह एक विनम्रतापूर्ण कार्य था। फिले. 2:6-8

ग. यह एक ईश्वरीय कार्य था। रोमि. 5:8

iii. यीशु मसीह हमें उद्धार का उपहार निःशुल्क देता है। 1 यूह. 3:5, 1 तीमु. 1:15

क. परमेश्वर का उद्धार ईश्वरीय है।

1. परमेश्वर ने ही मनुष्य को बचाने की पहल की थी। (रोमि. 5:8)
2. परमेश्वर ने एक छुटकारा देनेवाले को, अपने पुत्र यीशु मसीह को, भेजा। यूह. 1:10-11

ख. परमेश्वर के द्वारा दिया जाने वाला उद्धार मात्र यीशु मसीह में ही उपलब्ध है। प्रेरित. 4:12, यूह. 1:12

1. यीशु मसीह के उद्धार को ग्रहण करने वाले सभी लोग परमेश्वर की संतान बन जाते हैं। 1 यूह. 5:12
2. परमेश्वर के उपहार के द्वारा यीशु मसीह में हमारे पास वह सब कुछ है जिसकी हमें आवश्यकता है। रोमि. 8:32

ग. परमेश्वर के उद्धार का प्रत्यक्ष संबंध क्रूस और यीशु मसीह के पुनरुत्थान से है।

1. क्रूस एक वास्तविकता है; इतिहास में ऐसा वास्तव में हुआ था। 1 पत. 1:20, इफि. 1:4, 3:11
2. परमेश्वर का पापी मनुष्य से व्यवहार करने का आधार क्रूस है। रोमि. 3:25
3. मसीह की मृत्यु के बारे में नया नियम में 175 से भी अधिक बार

बताया गया है। (-टोरी)

4. यीशु के देह धारण करने का उद्देश्य क्रूस था। मरकुस 10:45
5. नया नियम के सभी लेखक क्रूस के बारे में बताते हैं (सिवाय याकूब के, परन्तु वह अपना संदेश क्रूस के आधार पर ही निर्माण करता है। [याकूब 5:7-11])।

घ. परमेश्वर के द्वारा मिलने वाला उद्धार परमेश्वर के अनुग्रह के कारण उपलब्ध हुआ है। इफि. 2:7

1. मनुष्य पूर्णत: पथभ्रष्ट है, बंधन में है, भटका हुआ और जन्म से दोषी है। रोमि. 3:23
2. उद्धार आरंभ से अन्त तक परमेश्वर की ओर से ही है। इफि. 2:8-9

ङ. परमेश्वर का उद्धार यह तत्काल (उसी क्षण) होने वाला अनुभव है।

1. जैसे ही हम मसीह यीशु पर अपने उद्धारकर्ता के रूप में विश्वास करते हैं और उसका अंगीकार करते हैं, उसी क्षण परमेश्वर विश्वासी पर अपनी समस्त संपूर्णता को उण्डेल देता है।
2. मसीह में हम धार्मिकता, छुटकारा और पवित्रता प्राप्त करते हैं।
3. यीशु मसीह को ग्रहण करने पर उसमें हमारा पूरा उद्धार होता है।
4. तथापि, एक बार बचाए जाने के बाद, इसलिये कि मसीही जन अनुग्रह और विश्वास में परिपक्व होता जाता है, एक बढ़ोतरी की प्रक्रिया होती रहती है।

च. चुनाव मनुष्य को करना है; उसे परमेश्वर के उद्धार को ग्रहण करना है; परन्तु इसे ठुकराया भी जा सकता है। इब्रा. 2:8

1. मनुष्य पर उद्धार थोपा नहीं गया है; अत: मनुष्य अपनी इच्छा से परमेश्वर के अनुग्रह के प्रति उत्तर दे सकता है।
2. परमेश्वर मनुष्य के साथ व्यवहार करते सयम उसे एक ज़िम्मेदार तथा नैतिक प्रतिनिधि मानता है।
3. मनुष्य स्वतंत्र रीति से चुनाव कर सकता है; वह परमेश्वर के उद्धार को जानते-समझते हुये, अपनी इच्छा से प्रतिउत्तर देता है।
4. परमेश्वर का अनुग्रह विश्वास से प्राप्त किया जाता है। रोमि. 1:17

अ. यह मनुष्य के नैतिक स्वभाव को परिवर्तित करता और नया जीवन देता है।

ब. यह उसे एक नैतिक उद्देश्य, परमेश्वर का उद्देश्य, देता है।

पाठ 4

परमेश्वर का मिशनरी पुत्र–2

(यह पाठ पिछले पाठ से आगे है।)

छ. परमेश्वर की ओर से मिलने वाले उद्धार को, यीशु में विश्वास रखने के द्वारा प्राप्त किया जाता है।

1. जब हम मसीह में विश्वास रखते हैं तब वह हमें अपने अनुग्रह से बचाता है। इफि. 2:8, इब्रा. 11:1
2. विश्वास मात्र परमेश्वर के अनुग्रह को समझने से अधिक है; यह परमेश्वर के अनुग्रह को ग्रहण करने की एक व्यक्तिगत प्रतिक्रिया है। रोमि. 10:17
   - अ. विश्वास मात्र मानसिक सहमति (मानवीय इच्छा) नहीं है। याकू. 2:19
   - ब. विश्वास मात्र बाहर से ही सहमति नहीं है। रोमि. 12:1
   - स. विश्वास मात्र ईमानदार रहने से अधिक है। यूह. 14:6
3. परमेश्वर समस्त मानवजाति को दो अलग-अलग समूहों में बांटता है: एक विश्वासी लोगों का समूह (जिनमें विश्वास है) और दूसरा अविश्वासियों का समूह (जिनमें विश्वास नहीं है)।

iv. आदम और हव्वा के विद्रोह के कारण सृष्टि में पाप का प्रवेश हुआ। उत्प. 3:1-24

क. पाप का परिणाम अनन्त मृत्यु और परमेश्वर से अलग हो जाना है।

1. सब ने पाप किया है, और परमेश्वर की महिमा से रहित हैं। रोमि. 3:23
2. पाप का परिणाम मृत्यु है: सब मरते हैं क्योंकि सब पापी हैं। रोमि. 6:23
3. मनुष्य के पतन ने समस्त सृष्टि को प्रभावित किया है। पौलुस कहता है कि पाप के कारण समस्त सृष्टि ने अपनी मूल महिमा, उद्देश्य और लक्ष्य को खो दिया है। सृष्टि असिद्धता और अपूर्णता की दशा में है। रोमि. 8:22

ख. यीशु मसीह का उद्धार हमें पाप के परिणाम से छुटकारा पाने का उपाय

प्रदान करता है। 1 यूहन्ना 1:7

1. यीशु ने समस्त मानवजाति के पापों को अपने ऊपर ले लिया (यशा. 53:6) और पाप के कारण मिलने वाले मृत्यु दण्ड पर विजयी हुआ। रोमि. 5:18
2. परमेश्वर ने हमारे पापों के लिये मात्र प्रायश्चित किये जाने से भी अधिक कुछ किया; जब निर्दोष यीशु हमारे लिये पाप ठहराया गया, तब परमेश्वर ने पाप की जड़ का अत्यंत प्रभावकारी रूप से हल निकाला किया। 2 कुरि. 5:21
3. यीशु ने शैतान के कार्यों को नाश करने के लिये अपना प्राण दिया। 1यूह. 3:8
4. यीशु ने अपनी मृत्यु के द्वारा दुष्ट शैतान को निकम्मा कर दिया। इब्रा. 2:14

v. हमारे पापों का दण्ड चुकाने के लिये यीशु परमेश्वर का मेम्ना बना। यूह. 1:29

क. हमारे महायाजक यीशु ने बलि उपलब्ध कराया, उसने स्वयं को ही दे दिया। प्रका. 21:22

ख. उसका यह ईश्वरीय और असीम बलिदान, ईश्वरीय और असीम उद्धार को देता है। कुलु. 1:19,20

ग. यह उद्धार गुणवत्ता, अवधि और क्षमता में असीम है। रोमि. 8:19-21

घ. यह उद्धार अनन्त छुटकारा और मीरास है। इब्रा. 9:12-15

ड. परमेश्वर का अनुग्रह पाप के शाप पर विजयी हुआ है। रोमि. 5:12-21, विशेष रूप से 18

च. यीशु का बलिदान हमारे उद्धार के लिए अन्तिम और पूर्ण कार्य है। इब्रा. 7:27; 9:12

vi. समस्त सृष्टि को छुड़ाया जाएगा।

क. यशायाह ने ''नये आकाश और नई पृथ्वी'' की आशा की है। यशा. 65:17

ख. यूहन्ना ने नये आकाश, नयी पृथ्वी और नए यरूशलेम की पूर्णता को देखा है। प्रका. 21-22

ग. नये किये गये आकाश और पृथ्वी के केन्द्र में मेन्ना है: प्रकाशितवाक्य में "मेम्ने" का उल्लेख 28 बार मिलता है।

घ. परमेश्वर का मेम्ना सारे जगत के पापों को उठाता है: समस्त सृष्टि से

मेल संभव कराता है।

ड. इस व्यापक उद्धार में शैतान, उसके दूत, उसके शिष्यों के लिये उद्धार नहीं हैं। वे अविश्वासियों के साथ आग की झील में नाश होंगे। प्रका. 9:20

च. अन्ततः उद्धार विजयी होगा। 1 कुरि. 15:24, 28

पाठ 5

परमेश्वर का मिशनरी आत्मा–1

परिचय: परमेश्वर मानवजाति से प्रेम करता है, और निरंतर हमें मृत्यु और हमारे पापी स्वभाव के विनाश से छुड़ाने के लिये आगे बढ़ता रहता है। परमेश्वर पृथ्वी पर पवित्र आत्मा के व्यक्तित्व में आता है ताकि संसार को उसके पाप से अवगत कराये, सभी लोगों को अपने पास लाए, और मसीहियों को सुसज्जित करे एवं सामर्थ प्रदान करे।

i. यीशु ने प्रतिज्ञा की थी कि पिता पवित्र आत्मा को भेजेगा।
   क. पवित्र आत्मा त्रिएक परमेश्वर का तीसरा व्यक्ति है। मत्ती. 28:19
   ख. पिता ने पवित्र आत्मा को मानवजाति को अपने निकट लाने के लिये भेजा है। यूहन्ना 14:26

ii. पवित्र आत्मा की मुख्य भूमिकाओं में से एक उसके शीर्षक से प्रमाणित होती है: वह ईश्वरीय ''सहायक'' है।
   क. यीशु ने पवित्र आत्मा के बारे में बताते समय यूनानी शब्द "पेराक्लेटॉस" का उपयोग किया था: यूहन्ना 14:16 और 26 यूहन्ना 15:26 और यूहन्ना 16:7
      1. यह शब्द किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में बताता है जो हमारी वकालत करने या हमें शांति देने के लिये हमारे साथ-साथ रहता है। अंग्रेजी बाइबल में इसका अनुवाद ''शांति देनेवाला,'' "परामर्श देने वाला" या "वकालत करने वाला" किया गया है।
      2. परमेश्वर, हमें उन सभी बातों को सिखाने के लिये और उस प्रत्येक बात को स्मरण कराने के लिये जो यीशु ने अपने शिष्यों से कही थीं, पवित्र आत्मा के द्वारा हमारे पास आता है। यूहन्ना 14:26
   ख. पवित्र आत्मा, हमारे वकील के रूप में, हमें दोषी ठहराने वाले (शैतान) के विरुद्ध हमें परामर्श देने वाला है।
   ग. यह पेराक्लेटास हमारे साथ सर्वदा रहेगा। यूहन्ना 14:16

iii. पवित्र आत्मा यीशु के बारे में गवाही देता है। यूहन्ना 15:26
   क. परमेश्वर का पवित्र आत्मा ही वह शांत धीमा शब्द है जिसे हम अपने

हृदयों में कई बार गहराई से सुनते हैं, जो हमें यह बताती है कि मार्ग, सत्य और जीवन मसीह यीशु ही है। यूहन्ना 14:6

ख. वह पवित्र आत्मा ही है जो आज अविश्वासियों को यीशु के बारे में स्वप्न और दर्शन देता है।

iv. पवित्र आत्मा ही सब लोगों को उद्धार तक लाता है और व्यक्ति को दोषी होने का अहसास कराता है। यूह. 16:8

क. जब हम गलत कर रहे होते हैं, या जब हमारे उद्देश्य और विचार परमेश्वर को प्रसन्न करने के योग्य नहीं होते, तब पवित्र आत्मा ही हमें दोषी होने का एहसास कराता है।

पाठ 6

परमेश्वर का मिशनरी आत्मा–2

v. पवित्र आत्मा, पिन्तेकुस्त के दिन, कलीसिया पर पूर्णता से उतरा। प्रेरित. 2:1-13

क. पिन्तेकुस्त संसार के इतिहास की एक विशिष्ट घटना है; कोई और धर्म यह नहीं बताता कि परमेश्वर मनुष्य की खोज करता है। वे सभी यही सिखाते हैं कि मनुष्य को परमेश्वर को पाने के लिए संघर्ष करना है।

1. मात्र मसीहियत ही पिन्तेकुस्त के दिन जैसी घटना का, विशिष्ट स्थान और विशिष्ट समय में अतिक्रमण रूपि ईश्वरीय प्रवेश या आगमन होने का, दावा कर सकती है।
2. मात्र मसीहियत ही एक ऐसे परमेश्वर का दावा कर सकती है जो हमसे इतना अधिक प्रेम करता है कि वह:
   - अ. पृथ्वी पर आया, चरनी में जन्मा (हमारे लिये देहधारण किया)
   - ब. पूर्णतया पापरहित जीवन जीया (हमारे पापों का दण्ड चुकाने के लिये सिद्ध बलिदान बना),
   - स. क्रूस पर चढ़ाया गया (हमारे पापों के लिये प्रायश्चित बना), और
   - द. मृतकों में से जी उठा (और इसके द्वारा हम विश्वास करने वालों के लिए मृत्यु पर जीवन की विजय को उपलब्ध कराया)।

ख. पवित्र आत्मा पूर्णता के साथ कलीसिया पर आया ताकि परमेश्वर की सन्तानों को ऐसे समर्थ बना दे कि वे यरूशलेम और सारे यहूदिया और सारे सामरिया में, और पृथ्वी की छोर तक (उसके) मसीह यीशु के गवाह हों। प्रेरित: 1:8

ग. पवित्र आत्मा परमेश्वर की सन्तानों को आत्मिक वरदान (करिज़्माटा) देने आया कि मसीह की देह में पाए जाने वाले लोग एक दूसरे की सेवा करें।

1. पवित्र आत्मा परमेश्वर की सन्तानों को विभिन्न वरदान देता है।

इब्रानियों 2:4

2. ये वरदान ''सब के लाभ पहुंचाने के लिये'' अर्थात् मसीह की देह में एक दूसरे का निर्माण करने के लिये दिये गए हैं। 1 कुरि. 12:7
3. हमें बड़े से बड़े वरदानों की धुन में रहना है। (1 कुरि. 12:31), परन्तु विश्वास, आशा और प्रेम की उपेक्षा करने का खतरा उठाते हुए नहीं; जिनमें प्रेम सब से बड़ा है। 1 कुरि. 13:13

घ. पवित्र आत्मा जिनमें रहता उन्हें ईश्वरीय फल देता है। गला 5:22-23

1. ध्यान दें कि इन पदों में फल 'एक वचन' में है, इस से यह संकेत मिलता है कि दिये गये विशेष गुण एकसाथ होते हैं, जो सब के सब उस विश्वासी के जीवन में पाये जाने चाहिये जो पवित्र आत्मा के सामर्थ के नियंत्रण में रहता है।
2. प्रथम तीन सूचीगत गुण अर्थात् प्रेम, आनन्द और शांति विश्वासी के मस्तिष्क की वे आदते हैं जिनका स्त्रोत परमेश्वर में पाया जाता है। *(दी बाइबल नोलेज कमेंटरी)*
3. दूसरे तीन अर्थात धीरज, कृपा और भलाई, दूसरों तक जाते हैं, जो प्रथम तीन से दृढ़ किये जाते हैं।
4. अंतिम तीन अर्थात् विश्वास, नम्रता और संयम, उस विश्वासी के सामान्य चाल-चलन का मार्गदर्शन करते हैं जो उस पवित्र आत्मा के द्वारा चलाये चलता है जो इन अनुग्रहों का स्रोत है।

निष्कर्ष: परमेश्वर हम से इतना अधिक प्रेम करता है कि वह हमें पाप का बोध कराने के लिये, यीशु का गवाह बनाने के लिये, हमारा शांति देनेवाला (हमारा वकील, सांत्वना देनेवाला, और परामर्शदाता) बनने के लिये, हमें अद्भुत वरदान देने के लिये (जिससे हम कलीसिया में दूसरों के लिए कार्य कर सकें) और हमें अपने आत्मा का फल देने के लिये पवित्र आत्मा को भेजता है (कि हम हमारे आस-पास के ज़रूरतमंद संसार में परमेश्वर के बचाने वाले अनुग्रह और दया को प्रगट कर सकें)।

पाठ 7

परमेश्वर के मिशनरी लोग

परिचय: परमेश्वर ने, युग-युग से, मानवजाति के साथ प्रेमी संबंध रखने की अभिलाषा की है। सर्वप्रथम आदम और हव्वा के साथ, तत्पश्चात् पितरों के साथ, उसके बाद संपूर्ण इस्राएल जाति के साथ, और आज संसार भर के सभी मसीहियों के साथ। परमेश्वर की अन्तिम अभिलाषा यही है कि सभी जातियाँ उसकी महिमा को जानें ताकि "कोई भी नाश न हो परन्तु (उसके साथ स्वर्ग में) अनन्त जीवन पाए।" यूह. 3:16

i. परमेश्वर ने सर्वप्रथम अपने चुने हुए लोगों के द्वारा मानवजाति के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयास किया:

   क. परमेश्वर के विरुद्ध पाप करने से पहले आदम और हव्वा ने परमेश्वर के साथ और एक दूसरे के साथ अद्‌भुत मेल-मिलाप का आनन्द उठाया।

      1. परमेश्वर के द्वारा बनाये गये प्रथम लोग आदम और हव्वा ने एक दूसरे के साथ ("वे नंगे थे, पर लजाते न थे।" [उत्प. 2:25]) और परमेश्वर के साथ अद्‌भुत संबन्ध का आनन्द उठाया। (वे "दिन के ठण्डे समय में" उसके साथ-साथ चलते थे।'' [उत्प. 3:8-9])।

      2. परन्तु परमेश्वर के विरुद्ध विद्रोह करने पर, पाप ने परमेश्वर के साथ की उनकी एकता को तोड़ दिया। तभी से, मानवजाति परमेश्वर के साथ की संगति से दूर हो गई है।

   ख. परमेश्वर ने अब्राहम को यह कहते हुए कि "भूमण्डल के सारे कुल तेरे द्वारा आशीष पाएंगे'' (उत्प. 12:1-3), उसे और उसके परिवार (इसहाक, याकूब और एसाव, याकूब के बारह पुत्रों इत्यादि) को आशीष देने की प्रतिज्ञा की थी।

   ग. परमेश्वर ने मूसा को दस आज्ञाएं दी थीं, जिस में इस्राएल के लोगों को परमेश्वर के साथ और दूसरों के साथ सही संबंध रखने की दस सरल मार्गदर्शिकाएं थीं। निर्ग. 20:1-10

ii. इस्राएल, परमेश्वर के चुने हुए लोग

क. परमेश्वर और इस्राएल के बीच की वाचा का एक मिशनरी लक्ष्य था। निर्ग. 19:5-6

ख. परमेश्वर ने इस्राएल के साथ के अपने संबंध में एक नमूना प्रस्तुत किया था कि वह दूसरी जातियों के साथ कैसा व्यवहार करेगा। यशा 37:20

ग. इस्राएल के लोगों (यहूदियों) ने प्राय: परमेश्वर की इस योजना की उपेक्षा करने का ही चुनाव किया कि उन्हें एक मिशनरी राष्ट्र या जाति बनना है। इसके विपरीत, इस्राएल पड़ोसी जाति के लोगों के साथ के अपने संपर्क के परिणामस्वरूप परमेश्वर से दूर हो गया।

घ. परमेश्वर ने इस्राएल को पश्चात्ताप करने और उसकी ओर फिरने की चेतावनी देने के लिये भविष्यद्वक्ताओं को बुलाया, परन्तु यहूदी यदा-कदा ही सुनते थे।

ड. भविष्यद्वक्ताओं ने घोषणा की कि यहूदी अंतत: पश्चात्ताप करेंगे और परमेश्वर के उद्धार के प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे।

iii. परमेश्वर ने अपने उद्धार का प्रस्ताव सभी लोगों को दिया

क. भविष्यद्वक्ताओं ने सभी लोगों के लिए पहले से महान आशीषों के बारे में बताया था। यशा 25:6-8

ख. उन्हें पहले ही एक ऐसे समय के बारे में बता दिया गया था जब ''पृथ्वी यहोवा की महिमा के ज्ञान से ऐसी भर जाएगी।'' हब. 2:14

ग. परमेश्वर का मिशन अपना ध्यान इस्राएल से आगे सभी जातियों में केंद्रित करता है ताकि सारे संसार में उसकी महिमा को जाना जाये। यशा. 66:18-19

घ. परमेश्वर चाहता है कि सभी जातियाँ उसकी महिमा को देखें। यहे. 36:22-23

'परमेश्वर के मिशनरी लोग' का सारांश

1. व्यक्ति – जब आदम और हव्वा ने, परमेश्वर के साथ मानवजाति के मैत्रीपूर्ण संबंध को तोड़ते हुए पाप किया तब परमेश्वर ने अब्राहम, मूसा और अन्य लोगों के द्वारा उस संबंध को पुन: स्थापित करने का प्रयास किया।
2. इस्राएल – परमेश्वर ने इस्राएल के साथ के अपने विशेष संबंध के द्वारा मानवजाति के साथ पुन: संबंध स्थापित करने का प्रयास किया, ताकि

उसकी महिमा सभी जातियों में जानी जाये।

3. जातियाँ – आज परमेश्वर का आत्मा संसार भर में कार्यरत् है जिसके द्वारा वह प्रत्येक देश, जाति, भाषा के लोगों को अपने पास बुलाता है।

पाठ 8

परमेश्वर का राज्य

i. यीशु का मुख्य संदेश यह था कि लोग स्वर्ग के राज्य को ग्रहण करने की तैयारी करें। मत्ती 4:17

क. यीशु ने इसी संदेश के साथ अपनी सेवकाई का आरंभ किया (मरकुस 1:14-15) और इसी संदेश के साथ उसका समापन किया (प्रेरित. 1:3)।

ख. यहूदी संस्कृति में ''परमेश्वर का राज्य'' और ''स्वर्ग का राज्य'' इन शब्दों का उपयोग अदल-बदल कर किया जाता था।

ग. यीशु के दिनों में परमेश्वर का राज्य शब्द ''परमेश्वर का शासन'' के रूप में समझा जाता था, जिसमें कोई भौगेलिक क्षेत्र परमेश्वर का होगा यह आवश्यक नहीं था।

घ. ''राज्य'' शब्द का उपयोग चारों सुसमाचारों में 119 बार हुआ है:

1. मत्ती में 52 बार
2. मरकुस में 19 बार
3. लूका में 44 बार
4. यूहन्ना में 4 बार

ii. जब यीशु 'परमेश्वर का राज्य' (या स्वर्ग का राज्य, जो कि एक ही बात है) के बारे में बात करता था तो उसके पास उसका जो अर्थ था वह उस अर्थ की तुलना में अधिक था जो उस समय के लोग उस शब्द के पुराना नियम में किये गये उपयोग से समझते थे।

क. पुराने नियम में यह समझा जाता था कि परमेश्वर इस्राएल का और समस्त सृष्टि का राजा है।

ख. परन्तु यीशु ने इस समझ को और अधिक करते हुये यह बताया कि:

1. परमेश्वर का राज्य हमारे हृदयों में भी फैलना है, परमेश्वर हमारे भीतरी मनुष्यत्व का राजा होना है। मत्ती 6:33
2. परमेश्वर का राज्य न मात्र समस्त सृष्टि पर है परंतु वह हमारे हृदय, मन और देह के प्रत्येक अंश पर भी राज्य करने का

अधिकार रखता है।

iii. परमेश्वर का राज्य पहले ही अस्तित्व में है, परन्तु इसका एक भविष्य में पूरा होने वाला पक्ष भी है।

क. यीशु जब पृथ्वी पर आया तब उसने परमेश्वर के राज्य को स्थापित किया। मत्ती 9:35

1. कोई भी व्यक्ति, आत्मिक रूप से जन्म लेने के द्वारा इस राज्य में प्रवेश करता है। यूह. 3:3
2. इस राज्य से जुड़ने के लिए एक आमूल भीतरी परिवर्तन की आवश्यकता है। लूका 1:15
3. इसका आना यहूदी आशा की प्राप्ति था। मत्ती 25:34

ख. राज्य का एक भावी पक्ष है। लूका 13:28

1. इस भावी पक्ष का आरंभ मसीह की वापसी से होगा।
2. यह शैतान के राज्य के अन्त को लाएगा।
3. इसका अंतिम परिणाम नया आकाश और नयी पृथ्वी होगा।
4. यह राज्य इस संसार का नहीं होगा।

iv. इस राज्य के बहुत से चिन्ह हैं।

क. इसकी घोषणा की जाना एक चिन्ह है। मत्ती 4:18,19

ख. चमत्कार चिन्ह हैं।

1. चंगाई - मत्ती 4:23
2. दुष्टात्माओं को निकाला जाना -12:28
3. मृतकों में से पुनरुत्थान - मत्ती 10:8

निष्कर्ष: आज हम परमेश्वर के राज्य का आनन्द लेते हैं, परन्तु हमें उस अद्‌भुत दिन की महान आशा है जब उसका राज्य अपने सारे वैभव के साथ आएगा, जब हम अंतत: उसकी दीप्तिमान महिमा को देखेंगे। तब तक हमें उसके आगमन के लिये तैयारी करनी है।

पाठ 9

परमेश्वर की मिशनरी कलीसिया

परिचय: 'कलीसिया' का सच्चा, बाइबल-आधारित अर्थ उससे भिन्न है जो आज संसार कलीसिया के लिए जानता और समझता है। यह पाठ, 'कलीसिया' के बाइबल-आधारित अर्थ को समझने में हमारी सहायता करेगा।

i. संसार के द्वारा की गई कलीसिया की वर्तमान (गलत) परिभाषा:

क. संसार के विचार से 'कलीसिया' एक भवन, मसीही धर्म की आराधना का स्थान है जहां पर धार्मिक सभाएं होती हैं और जहां कलीसियाई संबंधित विषयों पर विशिष्ट रूप से पास्टर या पुरोहित ही कार्य करता है।

ख. कलीसिया क्या है इसकी इस गलत समझ में, कलीसिया के सदस्य यीशु मसीह में विश्वास का अंगीकार तो करते हैं परन्तु उनमें से अधिकांश भवन के बाहर निष्क्रिय रहते हैं।

ii. कलीसिया के लिये नये नियम की परिभाषा:

क. नये नियम के अनुसार कलीसिया परमेश्वर के लोग अर्थात् वे विश्वासी हैं जो यीशु मसीह में विश्वास का अंगीकार करते हैं।

ख. वे उसके नाम में बपतिस्मा और प्रभु भोज, आराधना, प्रार्थना, परमेश्वर की स्तुति, सहभागिता, गवाही देने, वचन की सेवकाई में भाग लेने के लिये तैयार होने के लिये और वृद्धि करने के लिए मिलते हैं।

iii. ''**इक्लेसिया**'' शब्द का अर्थ (नये नियम में जिसका अनुवाद प्राय: कलीसिया किया गया है)।

क. यूनानी शब्द ''**इक्लेसिया**'' का अर्थ है ''सभा, वे लोग जो बुलाये हुये हैं।''

ख. इस शब्द के, बाइबल संबंधित दो उपयोग निम्नलिखित हैं:

1. **विश्वव्यापी कलीसिया**–किसी एक समय के सभी मसीही विश्वव्यापी कलीसिया को बनाते हैं। मत्ती 16:18
2. **स्थानीय कलीसिया**–किसी एक विशिष्ट क्षेत्र के सभी मसीही स्थानीय कलीसिया को बनाते हैं; जैसे कि अन्तकिया की

''इक्लेसिया'': प्रेरित. 13:1

iv. परमेश्वर के लोगों का वर्णन करने के लिये मूल यूनानी नये नियम में दो शब्दों का प्रयोग हुआ है: ''कोईनोनिया'' और ''लाओस।''

क. ''**कोईनोनिया**'' अर्थात् (आत्मिक) सहभागिता''।

ख. ''**लाओस**'' अर्थात् (परमेश्वर के) लोग।

ग. ''**लाओस**'' (लोग) ''**कोईनोनिया**'' (सहभागिता/घनिष्ठता) में परमेश्वर को महिमा देते हैं:

1. स्तुति और प्रशंसा के द्वारा,
2. बाइबल से प्रचार और शिक्षा के द्वारा,
3. व्यक्तिगत और सामूहिक गवाही के द्वारा,
4. सहभागिता के द्वारा,
5. बपतिस्मा और प्रभु भोज के पवित्र संस्कारों का पालन करने के द्वारा।

v. कलीसिया का प्राथमिक मिशन निम्नलिखित कामों के द्वारा शिष्य बनाना है (मत्ती 28:19-20):

क. सुसमाचार प्रचार – उपस्थिति, उद्घोषणा, प्रोत्साहन, प्रसारण।

ख. स्थापना – विश्वासियों को दृढ़ करना।

ग. सुसज्जित करना – धर्मी जनों को सिद्ध बनाना। इफि. 4:12

घ. फैलाना – उसके सत्य का प्रचार करना।

vi. कलीसिया की बढ़ोतरी में सहायक घटक:

क. सुसमाचार की प्रत्यक्ष घोषणा करना।

ख. विश्वासियों और मण्डलियों की संख्या को बढ़ाना।

ग. मसीही समुदाय की उन्नति करना।

घ. आत्मिक वरदानों का उपयोग करना।

vii. कलीसिया के सच्चे अर्थ को पुन: पाने के लिये हम निम्नलिखित कार्य कर सकते हैं: मत्ती 16:18

क. प्रत्येक विश्वासी को परमेश्वर के साथ घनिष्ट सहभागिता में चलना और उसके वचन का शिष्य होना है। यूहन्ना 18:31

ख. प्रत्येक विश्वासी को दूसरों से परमेश्वर के प्रेम से प्रेम करना है। यूहन्ना 13:35

ग. प्रत्येक विश्वासी को परमेश्वर के राज्य के लिए फल लाना है। यूहन्ना 15:1-4

घ. प्रत्येक विश्वासी को परमेश्वर की आज्ञाओं को मानना है। यूहन्ना 15:14

ड. प्रत्येक कलीसिया के अगुवे को दूसरों को सिखाना है ताकि वे और दूसरों को सिखायें। 2 तीमु. 2:2

पाठ 10

परमेश्वर की मिशनरी कलीसिया का सदस्य

परिचय: प्रत्येक मसीही परमेश्वर के राज्य का राजदूत है। जब हम यीशु को अपना हृदय देते हैं, हमारा उसकी चुनी हुई जाति में जन्म होता है, और हम इस मिशन के साथ उसके राज-पदधारी याजक बन जाते हैं कि उसके राज्य के शुभ संदेश को दूसरों तक लेकर जाएं।

i. हम चुने हुए लोग हैं। इफि. 1:4-5
   क. ''चुने हुए'' – प्रत्येक मसीही व्यक्ति को, संसार की नींव रखे जाने से पहले से, परमेश्वर के द्वारा पवित्र होने के लिए चुना गया है। इफि. 1:4
   ख. ''लोग''– हम गोद लिये जाने के लिये जन्मे थे। 1 पत. 2:9-10, यूह. 1:12

ii. हम राज-पदधारी याजक हैं। 1 पत. 1:3-4
   क. ''राज-पदधारी''– हमने याजक पद विरासत में पाया है और महान राजा ने हमें नियुक्त या अभिषिक्त किया है।
   ख. ''याजक'' – याजक होने के कारण हमें मध्यस्थ होने के लिये बुलाया गया है। 1 पत. 1:4

iii. हमें पवित्र लोग होने को बुलाया गया है। कुलु. 1:21-22

iv. परमेश्वर के लोग छुड़ाए हुए लोग हैं। छुड़ाए जाने का अर्थ फिर से खरीद लिया जाना है। उदाहरण के लिए, जिन्हें परमेश्वर ने छुड़ाया है वे एक ऐसे दास के समान हैं जिसे उसके पिछले स्वामी ने फिर से खरीद लिया है और अपने पुत्र के रूप में, यहां तक कि परिवार की मीरास पाने के लिये, ग्रहण किया है।

v. इस संसार के खोए हुओं के लिए हमें परमेश्वर के राज्य के राजदूत होना है। 2 कुरि. 5:20

vi. हमें संसार में परमेश्वर की ज्योति को चमकाना है। मत्ती 5:14

vii. प्रारंभिक कलीसिया में सच्ची बाइबल-आधारित भूमिकाओं को लेकर गलतफहमियाँ उत्पन्न हुई थीं:
   क. प्रथम मसीहियों को अक्सर सताया जाता था। इस सताव के कारण

कलीसिया शुद्ध और शक्तिशाली रही तथा रोमी जगत में और उससे आगे तक भी तीव्रता से बढ़ी, पश्चिम में स्पेन और पूर्व में भारत तक फैली।

ख. परन्तु प्रेरितों के समय के पश्चात् शीघ्र ही कलीसिया राजनैतिक रूप से शक्तिशाली हो गई, और इसके अगुवा राजनैतिक और आर्थिक (अधर्मी) अभिलाषाओं से प्रेरित होते गए।

1. याजक वर्ग की सांसारिक शक्ति को पाने की इस बढ़ती चाहत के कारण व्यावसायिक (अर्थात वेतन लेकर काम करने वाले) याजक वर्ग की स्थापना हो गयी।
2. जैसे जैसे कलीसया धनवान होती गई, वेतन प्राप्त याजक वर्ग का प्रभाव और अधिकार कलीसिया पर इस हद तक बढ़ गया कि कलीसिया में काम न करने वाले मसीहियों ने अपने आत्मिक प्रभाव और नेतृत्व को भी खो दिया।
3. दु:खद बात है कि यह सिद्धान्त या शिक्षा चौथी शताब्दी तक समाप्त हो गई थी कि सब विश्वासी राजपद-धारी याजक है।

iv. बाइबल संबंधी समाधान

- कलीसिया को उन प्रथाओं और रचनाओं से छुटकारा पाना चाहिये जो:
  ① राजनैतिक (आर्थिक) विषयों के साथ आत्मिक विकास का समझौता करती हैं।
  ② अगुवों पर उत्तरदायित्व, नियंत्रण और गतिविधियों का बहुत अधिक बोझ डालती हैं, और अयाजक सदस्यों को निष्क्रिय बनाती हैं।
- कलीसिया को फलदायी सेवकाई और शिष्यता में अयाजक-वर्ग को सम्मिलित करने के अधिकाधिक तरीकों का पता लगाना चाहिये।
- प्रत्येक विश्वासी को अपने राजपद-धारी याजक के अधिकार को पुन: प्राप्त करना है, जैसे कि वह परमेश्वर, और संपूर्ण सृष्टि के राजा के द्वारा, परमेश्वर के राज्य के राजदूत के रूप में नियुक्त किया गया है।

पाठ 11

परमेश्वर का महान आदेश

परिचय: परमेश्वर द्वारा हमारे लिये, अर्थात उसकी संतान के लिये, ठहराये गये अभिप्राय को महान आदेश के पांच हवालों में देखा जा सकता है:

1. हमें शिष्य बनाना है - मत्ती 28:19, 20
2. हमें विश्वास और पश्चात्ताप का प्रचार करना है - मरकुस 16:15-16
3. हमें पश्चात्ताप और क्षमा का प्रचार करना है - लूका 24:47-48
4. हमें ईश्वरीय अधिकार से भेजा जाये - यूह. 20:21
5. हमें पवित्र आत्मा की सामर्थ में गवाही देना है - प्रेरित. 1:8

i. सुसमाचार प्रचार महान आदेश का महत्वपूर्ण घटक है। यह यीशु के प्रेम और उद्धार के शुभ समाचार का प्रस्तुतीकरण है। सुसमाचार प्रचार के तीन पक्ष हैं:

क. <u>उपस्थिति</u> यह बिना शब्दों के है।

1. कुछ लोग सुसमाचार प्रचार को मात्र गैर-विश्वासियों के साथ रहने और उनके बीच भले काम करने के रूप में ही देखते हैं।
2. वे <u>सामाजिक आदेश</u> को प्राथमिकता देते हैं। उत्प. 1:28; मत्ती 22:39
3. वे सुसमाचार प्रचार को भले काम करने (जैसे ग्रामीण विकास) और शांति प्रयासों और सामाजिक नवीनीकरण के रूप में देखते हैं।

ख. <u>उद्घोषणा</u> परमेश्वर के सत्य की घोषणा करना है।

1. कुछ सुसमाचार प्रचार को केवल शुभ संदेश की घोषणा किये जाने के रूप में देखते हैं।
2. वे <u>प्रचारीय आदेश</u> को प्राथमिकता देते हैं। उत्प. 3:9; रोमि. 10:13-14
3. सुसमाचार-प्रचार का अर्थ उद्घोषणा करना है। 1 कुरि. 15:1-4
4. नया नियम में ''सुसमसचार'' 76बार; ''सुसमाचार प्रचार करना'' 51 बार, ''प्रचारक'' तीन बार आता है।
5. प्रचार करना यह घोषणा करने का ही दूसरा रूप है। 1 कुरि. 2:4

ग. अनुनय-विनय करना यह मसीह में उद्धार का निमंत्रण देते हुए, प्रतिउत्तर देने के लिए प्रोत्साहित करना है।

1. प्रेरितों के काम 1:8 में ''गवाह'' शब्द का अर्थ ''शहीद'' है। दूसरे शब्दों में, हम लोगों को बचने हेतु प्रोत्साहित करते-करते मर जाने के लिये भी तैयार हैं। प्रेरित. 1:8
2. सुसमाचार को सही ठहराने और उसका बचाव करने के लिये हमें तैयार रहना है, परन्तु उसे थोपना नहीं है। 1 पत. 3:15
3. हमें दूसरों से अनुरोध (अनुनय-विनय या विनती, निवेदन) करना है कि वे सुसमाचार को ग्रहण करें । 2 कुरि. 5:20
4. पौलुस ने राजा अग्रिप्पा को मसीह को ग्रहण करने के लिए लगभग मना ही लिया था। प्रेरित. 26:28
5. सुसमाचार प्रचार का अर्थ सुसमाचार की घोषणा ऐसे करना है कि सुनने वाले व्यक्ति के पास प्रभु को ग्रहण करने का वैध अवसर हो।

ii. महान आदेश का दूसरा महत्वपूर्ण घटक आत्मिक उन्नति करना है। इसका अर्थ नये विश्वासी की आत्मिक उन्नति करना और उन्हें बलवंत करना है। आत्मिक उन्नति में कई महत्वपूर्ण तत्व आते हैं। प्रेरित. 2:41-47

क. सिद्ध करना शिष्यों को पूर्ण परिपक्वता में निर्मित करना है। इफि. 4:12

1. बपतिस्मा – प्रेरित. 2:41; 9:18; 33-34; 18:18; 19:4-5
2. शिक्षण – प्रेरित. 2:41-42
3. प्रार्थना – प्रेरित. 1:14; 3:1
4. सहभागिता - प्रेरित. 2:47
5. प्रभु भोज (रोटी तोड़ना) - लूका 22:19
6. दान देना - 1 कुरिंथि 16:2

ख. **निष्कर्ष:** प्रत्येक पीढ़ी महान आदेश को पूरा करने के लिए उत्तरदायी है। महान आदेश केवल शुभ संदेश बांटना या बताना ही नहीं है परन्तु शिष्य बनाना है। नये जन्म होने पर प्रक्रिया रुक नहीं जाती; इसके विपरीत यह ''हर एक व्यक्ति को मसीह में सिद्ध'' किये जाने तक चलती रहती है (कुलु. 1:26)।

पाठ 12

मत्ती 28:19-20 में दिया महान आदेश

परिचय: अपने शिष्यों के लिए यीशु की अन्तिम आज्ञा यह थी कि वे मात्र धर्मान्तरित लोग नहीं परंतु शिष्य तैयार करें। जैसे मानवीय माता-पिता शिशुओं को छोड़ नहीं देते, परन्तु उनका तब तक पालन-पोषण करते रहते हैं जब तक कि वे आत्म-निर्भर नहीं हो जाते, वैसे ही मसीही होने के कारण हमारा उत्तरदायित्व नई आत्माओं को मसीह के उद्धार में लाना और पूर्ण आत्मिक परिपक्वता में तब तक उनका पोषण करना है जब तक कि वे आत्मिक फल न लाने लगें।

iii. मूल यूनानी भाषा में, मत्ती 28:19-20 में एक ही आज्ञा है; यह आज्ञा शिष्य बनाने की है।

iv. इस मुख्य आज्ञा के अंतर्गत तीन क्रियाएं आती हैं:

क. हम शिष्य कैसे बनाये इसके बारे में यीशु बता रहा था। शिष्य बनाने के लिये:

1. हमें **जाना है,**
2. हमें **बपतिस्मा देना है,** और
3. हमें **सिखाना हैं।**

ख. **हमें जाना हैं** – हमारे दैनिक जीवनों में, हम जहां कहीं भी जाते हैं, हम जो कुछ भी करते हैं, हमें परमेश्वर के राज्य के शुभ संदेश को अपने प्रेमी व्यवहार और कार्य (सुसमाचार प्रचार की उपस्थिति) और शाब्दिक गवाही (सुसमाचार प्रचार की घोषणा) दोनों के द्वारा प्रस्तुत करना है।

1. जब यीशु ने हमें "**जाकर**" शिष्य बनाने को कहा है, तो महान आदेश के इस हिस्से को हम ऐसे समझते हैं कि यह **सुसमाचार प्रचार करने** के बारे में बता रहा है।
2. बाइबल आधारित, संतुलित प्रचार कार्य का अर्थ यह निकलता है कि कोई खोये हुओं के बीच "**जाकर**" शारीरिक रूप से **उपस्थित** है, प्रेम में होकर सत्य की **घोषणा** कर रहा है, इस एक उत्साही इच्छा के साथ कि परमेश्वर के साथ मेल कर लेने के

लिये उन्हें **प्रोत्साहित करे।**

3. सुसमाचार प्रचार कार्य में, सुसमाचार को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि सुनने वाले व्यक्ति के सामने मसीह को ग्रहण करने का एक **वैध** अवसर प्रदान किया जाये।

ग. **हमें बपतिस्मा देना है** – बपतिस्मा वह पवित्र संस्कार है जिसके द्वारा विश्वासी इस बात की पुष्टि करता/करती है कि वह मसीह का/की है।

1. महान आदेश में यह स्पष्ट है कि हमें सब से पहले बपतिस्मा देना है, इसके पश्चात् नये विश्वासियों को सिखाना है।
2. प्रेरितों के काम में बपतिस्मा से संबंधित आठ संदर्भों में बताया गया है कि **विश्वास करने के शीघ्र पश्चात्** ही सभी बपतिस्में हुए हैं, उदाहरण के लिए,
   अ. प्रेरितों के काम 2:41 में बताया गया है कि उन्होंने विश्वास किया और बपतिस्मा पाया।
   ब. अधिकांश मामलों में, लोगों ने जिस दिन विश्वास किया उसी दिन बपतिस्मा लिया।
   स. प्रेरितों के काम 10:47 में बताया गया है कि कैसरिया में पतरस ने रोमी नागरिक को बपतिस्मा दिया जिसे पहले ही पवित्र आत्मा मिल चुका था।
   द. प्रेरितों के काम 18:8 में, क्रिसपुस और उसके सारे घराने ने सब से पहले विश्वास किया और इसके बाद उन्हें बपतिस्मा दिया गया।
3. यहां इस तरह का नमूना लगता है कि पहले विश्वास आता है, इसके बाद बपतिस्मा, बाद में पवित्र आत्मा। तथापि, कई बार विश्वास करने के बाद ही पवित्र आत्मा दिया गया, और उसके बाद बपतिस्मा हुआ।

घ. **हमें सिखाना है** – पौलुस यह स्पष्ट करता है कि सिखाने में दो उद्देश्य आते हैं: नये विश्वासी को विश्वास में **स्थिर** करना, और उसके स्थिर हो जाने पर, उसे सेवा के लिए **सुसज्जित** करना।

1. जो मसीह में बालक है वह तब तक नहीं बढ़ सकता जब तक कि प्राथमिक शिक्षा के दूध को छुड़ाकर उसे परमेश्वर के वचन का भोजन उचित रूप से नहीं दिया जाता। उसे वचन के मांस को चबाना और पचाना सीखना है 1 कुरि. 3:1-3
2. इब्रानियों की पुस्तक का लेखक इब्रानियों 5:12-6:4 में इसे बहुतायत से स्पष्ट करता है, जहां विश्वासी निरंतर पुराने पश्चाताप को ही नया

रूप दे-दे कर बार-बार बचाए जाने का प्रयास कर रहे थे।

3. एक बार किसी ने नया जन्म पा लिया तो उसे फिर से नया जन्म पाने की आवश्यकता नहीं होती। उसे ''ठोस भोजन खाने'' को तैयार होना है (आत्मिक रूप से, 1 कुरि. 3:1-3), और एक परिपक्व शिष्य के रूप में, ऐसी सेवा (सेवकाई) में सुसज्जित होना है जिसमें उसके आत्मिक वरदानों का उपयोग फल लाने के लिये हो सके।
4. विश्वासी के जीवन में सीखना और सिखाना (स्थापित होना और सुसज्जित होना) का कभी भी अन्त नहीं होना चाहिए। शिष्यों के निर्माता होने के कारण हमें सदैव प्रशिक्षण देते रहने की अगुवाई से जुड़े रहना है। 2 तीमु. 2:2
5. शिष्य निर्माता का लक्ष्य अपने शिष्य को अपने उत्तरदायी और पुनरुत्पादन करने वाले शिष्यों का उत्पादन करते हुये देखना होता है।
6. कलीसिया अपने मिशन को तब ही पूरा कर रही होती है जब वह ऐसे सदस्यों का निर्माण कर रही होती है जो स्वयं उत्तरदायी और पुनरुत्पादक मण्डलियों का निर्माण करेंगे; ऐसी कलीसियाओं को बनायेंगे जो आर्थिक रूप से स्वयं पर निर्भर, स्व-शासित और स्व-विस्तार करने वाली हैं।
7. पौलुस, बरनबास, सीलास, मरकुस, थोमा और तीमुथियुस सभी कलीसिया-निर्माता थे, 30 से 40 वर्षों में, एशिया माइनर के प्रत्येक प्रमुख शहरी केन्द्र में और दूर भारत में भी एक कलीसिया थी।
8. यीशु ने भी कुछ को ही शिष्य बनाने पर ध्यान केंद्रित किया था, बारह अयाजक-व्यक्तियों को, और मुख्य रूप से तीन को, जबकि अपनी तीन वर्ष की सेवकाई में सैकड़ों को राज्य के लिए जीता था।

निष्कर्ष: हम जो मसीह में परिपक्व हैं, जो सेवा के लिए **प्रचार सुन चुके हैं, स्थिर किये जा चुके हैं, सुसज्जित होते रहे हैं**, उन्हें अब पौलुस के उदाहरण के अनुसार अपनी मीरास को फैलाने और नई कलीसियाओं को बनाने के द्वारा **फलदायी** होना है।

पाठ 13

कलीसिया स्थापना के लिए बाइबल आधार

परिचय: पवित्र आत्मा कलीसिया स्थापना के लिये कैसे मार्गदर्शन देता है और उसे आशीषित करता है इस बारे में नया नियम कुछ स्पष्ट निर्देश देता है:

i. कलीसिया स्थापना की चार अवस्थाएं हैं। मत्ती 13:1-9

क. जोतना - लोगों के हृदयों की भूमि को तैयार करना 1 कुरि. 3:6

1. उदाहरण: मैदान चुना गया और भूमि को तोड़ा गया है।
2. स्पष्टीकरण: एक विशिष्ट क्षेत्र के जन समूह को चुना जाता है (खोज के परिणामों के आधार पर) और विश्वासियों में से एक अच्छे कलीसिया स्थापक दल को नियुक्त किया जाता है।
3. प्रमुख बात: कलीसिया उस दल को यह बात स्पष्ट करती है कि उसे शिष्य बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

ख. बीज बोना–परमेश्वर के उद्धार के शुभ समाचार को प्रस्तुत करना। मत्ती 13:3

1. उदाहरण: वचन का बीज बोया गया है।
2. स्पष्टीकरण: कलीसिया स्थापक दल जाकर गैर-विश्वासियों को अच्छी तरह से बताता है।
3. प्रमुख बात: कलीसिया स्थापक दल सुसमाचार के सत्य की घोषणा करता है।

ग. फसल कटाई– खत्ते में पुलों को जमा करना - मत्ती 13:8

1. उदाहरण: नये फल को काटा जाता है।
2. स्पष्टीकरण: कलीसिया स्थापक दल उन लोगों की इच्छा को प्रोत्साहित करता है जो सुसमाचार को स्वीकार करने के लिये तैयार हैं।
3. प्रमुख बात: पवित्र आत्मा ग्रहण करने वाली आत्माओं को कायल करता है कि वे मसीह का अनुसरण करने का निर्णय लें।

घ. संग्रह करना– नये विश्वासियों को कलीसिया में सम्मिलित करना और उन्हें सेवकाई के लिए तैयार करना। 2 तीमु 2:2

1. उदाहरण: नयी फसल को भण्डार गृहों में भावी सेवा के लिए रखा जाता है।
2. स्पष्टीकरण: कलीसिया स्थापक दल विश्वासियों के सामूहिक आवश्यकताओं के बारे में बताता है।
3. प्रमुख बात: कलीसिया स्थापक दल नये विश्वासियों को स्थानीय कलीसिया में सम्मिलित करता है।

ii. कलीसिया स्थापना के दो बाइबलीय नमूने हैं। प्रेरित. 13-14

क. पहला नमूना : स्थानीय कलीसिया स्वयं (यरूशलेम स्वयं) अपने आस-पास के क्षेत्रों में (अपने यहूदिया, गलील और सामरिया में) नई कलीसियाओं की स्थापना करती है। प्रेरित. 9:31

ख. दूसरा नमूना: कलीसिया द्वारा स्थापक दल को भेजा जाता है कि कलीसियाओं की स्थापना करे:

1. दल अलग किया जाता है।	प्रेरितों के काम 13:1-4
2. दल संपर्क स्थापित करता है	प्रेरितों के काम 13:14-16
3. दल शुभ समाचार की घोषणा करता है	प्रेरितों के काम 13:17
4. दल फल देखता है	प्रेरितों के काम 13:43, 48
5. दल नये विश्वासियों को एकत्रित करता है	प्रेरितों के काम 13:43-44
6. दल शिष्यों को दृढ़ करता है	प्रेरितों के काम 14:21-22
7. दल अगुवों को निर्वाचित करता है	प्रेरितों के काम 14:23अ
8. दल नये परिवर्तितों को प्रोत्साहित करता है	प्रेरितों के काम 14:23ब
9. दल माता कलीसिया को रिर्पोट देता है	प्रेरितों के काम 14:27
10.दल बार-बार दौरा करता है (नियमित शिष्यता)	प्रेरितों के काम 15:36

पाठ 14

परमेश्वर की योजना– कलीसिया को बढ़ना है

परिचय: हमने परमेश्वर के प्राथमिक उद्देश्य (उसके राज्य को सभी लोगों तक ले जाना और शिष्य बनाना) को समझ लिया है और (कलीसिया स्थापना द्वारा) इसे पूरा करने के सर्वोत्तम तरीके को जान लिया है। अब हम देखेंगे कि इसके अनुसार कलीसियाओं को कैसा दिखना चाहिये?

iii. प्रथम शताब्दी की कलीसिया संख्या में बढ़ती गई (संख्यात्मक वृद्धि)।

क. प्रेरितों के काम 1:15 हमें बताता है कि यीशु की मृत्यु और पुनरुत्थान के पश्चात् और पिन्तेकुस्त के दिन से पहले उसके 120 अनुयायी थे। प्रेरितों के काम 1:15

ख. पिन्तेकुस्त के दिन पवित्र आत्मा के आने के बाद, विश्वासियों का समूह 3000 की संख्या में (प्रेरित. 2:41) और बाद में 5000 (प्रेरित. 4:4) तक बढ़ गया था।

ग. प्रेरितों के काम 5:14 के अनुसार ''बहुतों'' ने विश्वास किया और संख्या में वृद्धि होती चली गई। प्रेरित. 6:1, 7

iv. कलीसिया अनुग्रह में भी बढ़ती गई (आत्मिक परिपक्वता)

प्रेरित. 2:16-47

क. वचन का प्रचार किया जाता रहा।
प्रेरित. 2:16-36; 3:13-26; 5:42; 6:4; 7:1-53

ख. बहुतों ने बपतिस्मा लिया।
प्रेरित. 2:41, 46

ग. विश्वासी मिलकर रोटी तोड़ते थे।
प्रेरित. 2:42, 46

घ. उनमें अत्यधिक शिक्षा और सहभागिता थी।
प्रेरित. 2:42

ङ. उन्होंने अत्यधिक प्रार्थना की।
प्रेरित. 2:42; 3:1;4:24; 12:5-17

च. उनमें बहुत से चमत्कार हुए।

प्रेरित. 2:43; 5:12-16

छ. वे अपनी भौतिक संपत्ति एक दूसरे के साथ बांटते थे।
प्रेरित. 2:44-45; 4:32-35

ज. वे एकता ओर दैनिक सभाओं का आनन्द उठाते थे।
प्रेरित. 2:46

झ. उनके द्वारा प्रचार कार्य और गवाही देना होता था।
प्रेरित. 2:47; 3:12; 4:5; 4:33; 5:42

v. कलीसिया बढ़ती गई क्योंकि वह मसीह में और पवित्र आत्मा में केन्द्रित थी

क. आत्मिक पहलू इसका आधार है: यीशु और पवित्र आत्मा।

1. पवित्र आत्मा की सामर्थ
प्रेरित. 4:19-21, 33

2. पवित्र आत्मा के वरदान
प्रेरित. 2:1-4

3. पवित्र आत्मा का नेतृत्व
प्रेरित. 4:19; 5:4; 6:5

ख. विश्वासियों के जीवनों में कलीसिया केन्द्रीय बिन्दु थी।

1. सदस्यों में दृढ़ अनुशासन था।
प्रेरित. 5:4

2. उनमें शिष्यता की शिक्षा नियमित चलती थी।
प्रेरित. 2:42

3. उनमें एक दूसरे के प्रति पारस्परिक प्रेम था।
प्रेरित. 4:32

ग. गवाही देने के लिये स्वाभाविक संपर्क के अवसरों का उपयोग किया गया।
प्रेरित. 2:7-12; 10-12

घ. अगुवाई को न्याससंगत रूप से बांटा गया था।
प्रेरित. 6:1-7

ड. विषय-वस्तु पवित्रशास्त्र के वचनों पर आधारित और यीशु में केन्द्रित होती थी। प्रेरित. 2:14-36; 4:13; 6:15

च. सुसमाचार बताने का तरीका लचीला और श्रोताओं द्वारा ग्रहण किये जानेवाला था।
प्रेरित. 2:37-40; 3:12-26

छ. उनमें साहसी और गतिशील अगुवाई थी।
प्रेरित 4:19; 5:5; 6:5

ज. उनमें महान आदेश के प्रति आज्ञाकारिता थी।
प्रेरित. 1:1-2:13

झ. उनमें प्रार्थना, स्तुति और पवित्र वचनों के प्रति समर्पण था।
प्रेरित 4:23-31

ञ. उनमें जीवन की पवित्रता थी।
प्रेरित. 5:1-11;

vi. कलीसिया की सेवकाई सर्वांगीण थी। आत्मिक के साथ भौतिक सेवकाई भी थी।

क. विश्वासियों ने अपनी सम्पत्ति एक दूसरे के साथ साझा कर ली थी इसलिए किसी को कोई कमी नहीं होती थी। प्रेरित. 2:44-45

ख. पतरस ने मंदिर के फाटक पर बैठे लंगड़े व्यक्ति को परमेश्वर की चंगाई दी। प्रेरित. 3:1-8

ग. विश्वासियों ने अपने बीच पाई जाने वाली विधवाओं की देखभाल की। प्रेरित. 6:1

घ. जिस प्रकार से प्रथम पीढ़ी के विश्वासियों ने अपने ज़रूरतमंद लोगों की भौतिक और शारीरिक आवश्यकताओं की चिंता की, वैसे ही हमें भी अपने आस-पास लोगों के भौतिक और शारीरिक आवश्यकताओं के प्रति सहायता करने के लिये हर संभव कार्य करना चाहिये।

vii. बड़े सताव के बीच भी कलीसिया बढ़ती गई। प्रेरित. 8:1-4

क. अगला पाठ इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त को और अधिक पूर्णता से बताएगा।

पाठ 15

परमेश्वर का मिशन – सभी बचाए जाएं

1. परमेश्वर सब खोए हुओं को बचाना चाहता है। 1 तीमु. 2:4-5
   क. परमेश्वर आदम और हव्वा को बाग में ढूंढने का आया था। उत्प. 3:9
   ख. परमेश्वर की दृष्टि इस्राएल देश पर निरंतर लगी रही।

ii. यीशु भी सब खोए हुओं को बचाना चाहता है। लूका 19:10
   क. यीशु पापियों को बचाने के लिए आया। 1 तीमु. 1:15
   ख. डेविड लिविंगस्टोन का उद्धरण: "परमेश्वर का एक ही पुत्र था, और उसने उस पुत्र को मिशनरी बना दिया।"

iii. यीशु के द्वारा बताये गये दृष्टांत इस तथ्य का उदाहरण देते हैं कि परमेश्वर खोए हुये लोगों को खोज रहा है।
   क. खोई हुई भेड़ - मत्ती 18:12
   ख. खोया हुआ सिक्का - लूका 15:8-10
   ग. खोया हुआ पुत्र - लूका 15:11-32

iv. परमेश्वर की योजना यह है कि विश्वासी लोग उसके शुभ-समाचार को खोए हुये लोगों तक ले जायें।
   क. इसके लिये परमेश्वर ने हमें आवश्यक संसाधन दिये हैं। रोमियों 10:12
   ख. परमेश्वर उन सब को बचाता है जो उसका नाम लेते हैं। रोमियों 10:13
   ग. अवश्य है कि परमेश्वर के लोग शुभ-समाचार लेकर खोए हुओं तक जायें। रोमियों 10:14
   घ. अवश्य है कि कलीसिया के कुछ लोग प्रचार करें; और बाकी लोग प्रचारकों को भेजने में सहायता करें। रोमियों 10:15
   ड. खोए हुओं को शुभ-समाचार सुनाना मनोहर बात है। रोमियों 10:15

v. परमेश्वर अपने निवेश पर अच्छा लाभ चाहता है। मत्ती 25:14-30
   क. परमेश्वर चाहता है कि पकी फसल को काटा जाए।
   ख. परमेश्वर अपेक्षा करता है कि उसके राज्य की घोषणा को प्रतिउत्तर मिले। मत्ती 10:14
   ग. परमेश्वर आशा करता है कि बोने वाले कटनी काटें। मत्ती 10:14

घ. परमेश्वर आशा करता है कि खोई भेड़ों को भेड़शाला में लाया जाये। मत्ती 18:11-14

ड. यीशु आशा करता है कि मछुवारों के द्वारा बहुत सी मछलियां पकड़ी जाये। लूका 5:4-11

च. यीशु आशा करता है कि अंजीर के वृक्ष में फल लगे। लूका 13:6-9

छ. परमेश्वर आशा करता है कि उसके भोज की मेज़ अतिथियों से भर जाये। लूका 14:15-23

ज. परमेश्वर आशा करता है कि खोया हुआ सिक्का मिल जाये। लूका 15:8-10

vi. परमेश्वर फसल के लिए कलीसिया की देखभाल करता है, उसे शुद्ध करता है और संगठित रखता है।

क. यीशु विश्वासियों की सुरक्षा, एकता, आनन्द और शुद्धता के लिए प्रार्थना करता है। यूहन्ना 17:11-17

ख. हमारी एकता का उद्देश्य यह है कि संसार परमेश्वर को जाने। यूहन्ना 17:20-23

vii. बीज बोने के लिए मज़दूरों की आवश्यकता है। मत्ती 13:3-9; 18:23; लूका 8:14-15

क. बोने वाले का काम बीज बोना है। मत्ती 13:3

ख. बोने वाला आँसुओं के साथ बोता है और आनन्द के साथ काटता है। भजन. 126:6

ग. बोने वाला (पक्षियों, कठोर भूमि इत्यादि के कारण) अपनी फसल को खो सकता है। मत्ती 13:4, 6, 7

viii. फसल काटने के लिए अधिक मज़दूरों को लाने की आवश्यकता है।

क. हमें वहां जाना है जहां फल मिलेगा अर्थात् जहां ग्रहणशीलता है।

ख. फसल तैयार है; फल के पक जाने पर हमें उसे इकट्ठा करना है। मरकुस 4:29; यूहन्ना 4:35

ग. फसल काटने के लिए पर्याप्त मज़दूर नहीं हैं। मत्ती 9:37; लूका 10:2

घ. कठिनाई के बावजूद हमें फसल काटना छोड़ना नहीं है। गला. 6:8-9

ड. अनन्त जीवन के फल के साथ मज़दूरी को चुकाया जाएगा। यूह. 4:36

पाठ 16

प्रेरित पौलुस की मिशनरी पद्धितियाँ और युक्तियाँ

(यह पाठ रेव्ह. डॉ. एस. डी. पोनराज द्वारा तैयार की गई सामग्री पर आधारित है।)

परिचय: पौलुस एक महान मिशनरी था। उसकी वे कौन सी पद्धतियाँ और युक्तियाँ थीं जिनके द्वारा वह उन स्थानों में प्रचार करता था और सुसमाचार का परिचय देता था जहां पर पहले कभी वैसा नहीं किया गया था? उसकी पद्धतियों को समझने से, हमारे स्वयं के मिशन में वैसे ही फलदायी सेवकाई स्थापित करने में, हमें सहायता मिल सकती है।

1. **उसका मिशन एक ही लोगों पर, अन्यजातियों पर, केन्द्रित था:** पौलुस मुख्य रूप से अन्यजातियों के पास गया था (प्रेरितों 22:21; 26:16-18)। वह अन्यजातियों के लिये प्रेरित था। उसने अपनी गतिविधियों को एक ही जन-समूह पर केन्द्रित किया था।
2. **वह ऐसे क्षेत्रों में सुसमाचार लेकर गया था जहां पहले कोई नहीं गया था:** पौलुस हर मामले में आरंभिक प्रचारक था, और प्रचार कार्य का आरंभ करने में वह जोखिम उठाने वाला भी था। अपने समय सुसमाचार से वंचित स्थानों पर पहुंचने के लिए पौलुस ने भौगोलिक निकटता का पालन किया। रोमियों 15:20
3. **उसने सुसमाचार को हर एक संदर्भ के अनुसार बनाया:** पौलुस ने सुसमाचार को लोगों तथा उनकी संस्कृति से संबंधित किया। उसने संदेश को ही नहीं परन्तु स्वयं को भी उन लोगों के साथ सुसंगत बनाया जिन्हें वह सुसमाचार सुनाता था। 1 कुरि. 9:22-23
4. **पौलुस ने निश्चित भौगोलिक क्षेत्रों पर अपने मिशन को केन्द्रित किया:** पौलुस कुछ निश्चित नगरों और अनेक भिन्न क्षेत्रों (एशिया माइनर, इत्यादि) तक पहुंचने के लिये समर्पित था। यह उसके जीवन-काल का लक्ष्य था। प्रेरित. 16:6-10
5. **उसने शहरी मिशन पर ध्यान केंद्रित किया:** पौलुस ने अपने मिशन के प्रयासों को नगरों पर केंद्रित किया था। उसका मानना था कि नगरों का लोगों की संस्कृति और आदतों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। ये नगर उस प्रांत में पाये जाने वाले शेष लोगों से संपर्क करने के लिये प्रमुख्य स्थल थे

(कुरिन्थ, इफिसुस, फिलिप्पी, अन्तकिया आदि)।

6. **उसने गृह कलीसियाएं स्थापित कीं:** पौलुस प्रत्येक परिवार को एक कलीसिया और प्रत्येक घर को कलीसिया भवन के रूप में देखता था। उसने लिखा है, ''उस कलीसिया को जो उनके घर में है।'' हम प्रेरितों के काम पुस्तक में पढ़ते हैं कि पौलुस ने बहुतेरी गृह-कलीसियाओं की स्थापना की थी। प्रेरित. 16:14, 15, 40; 17:5-7; 18:7
7. **उसने विस्तार और दृढ़ीकरण के बीच संतुलन रखा था:** सदैव नये स्थानों पर जाते हुये और नई कलीसियाएं बनाते हुये भी, पौलुस कभी भी वर्तमान मसीहियों को सिखाने से नहीं चुका था। उसका लक्ष्य था, "हम हर एक मनुष्य को चेतावनी देते हैं, और सारे ज्ञान से हर एक मनुष्य को सिखाते हैं, कि हम हर एक व्यक्ति को मसीह में सिद्ध करके उपस्थित करें" (कुलु. 1:28,29)।
8. **उसने मूल-निवासी कलीसियाओं की स्थापना की:** पौलुस जितना अधिक हो सके कलीसियाओं के देशीकरण के साथ-साथ उन्हें उनके संदर्भ के अनुसार स्थापित करने के लिये भी प्रति समर्पित था। हमें पौलुस द्वारा उन तीन "स्व" सिद्धान्तों सहित स्थापित की गई कलीसियाओं की जांच करनी चाहिये जिनसे हम परिचित हैं: 1. स्वावलंबीपन 2. स्वशासन, 3. स्व-विस्तार। पौलुस के द्वारा स्थापित सभी कलीसियाएं इन तीनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण होती हैं।
9. **वह स्थानीय अगुवों को सिखाने और बढ़ाने के लिये समर्पित था:** हम पढ़ते हैं, "उन्होंने (पौलुस और बरनबास ने) हर एक कलीसिया में उनके लिए प्राचीन ठहराए और उपवास सहित प्रार्थना करके उन्हें प्रभु के हाथ सौंपा जिस पर उन्होंने विश्वास किया था" (प्रेरित. 14:23)। पौलुस ने उन युवा अगुवों को सिखाने के उद्देश्य से "पास्तरीय पत्रियों" को भी लिखा जो तीमुथियुस और तीतुस और कुछ अन्य अगुवों के समान पास्टर थे।
10. **उसने एक दल के साथ काम किया:** पौलुस अकेला खिलाड़ी नहीं था। उसने सदैव एक दल के साथ काम किया। उदाहरण के लिए, उसकी प्रथम मिशनरी यात्रा का आरंभ एक वरिष्ठ व्यक्ति, बरनबास, के नेतृत्व में हुआ था। बाद में जब बरनबास द्वारा पौलुस को अगुवाई सौंपी गई तो उसे उसने नम्रतापूर्वक स्वीकार किया। उसके सेवकाई दल में यूहन्ना मरकुस, लुका, तीमुथियुस, तीतुस और कुछ और भी थे। उसने शुभचिंतकों के एक अच्छे दल को भी बनाया था जिन्होंने प्रार्थना और धन से उसकी सहायता की थी।

पाठ 20

मसीह के शिष्य का चिन्ह-1

परिचय: मसीह के शिष्यों में एक विशिष्ट गुण होना चाहिए-कि हम एक दूसरे से प्रेम करते हैं। यूहन्ना 13:34-35

1. एक सच्चे शिष्य का चिन्ह क्या है? प्रेम है।
2. हमारे प्रेम का परिणाम क्या है? सभी लोग यह जानेंगे कि हम मसीह के शिष्य हैं।

i. मसीह के शिष्यों को सभी लोगों से प्रेम करने की आज्ञा दी गई है।

क. यह संपूर्ण विश्व से संबंध रखता है। 1 थिस्स. 3:12

ख. हमें उस परमेश्वर के स्वरूप में बनाया गया है, जो समस्त मानवजाति से प्रेम करता है। उत्प. 1:26

ग. यीशु की अच्छे सामरी की कहानी हमें दूसरों से प्रेम करना सिखाती है। लूका 10:30-37

घ. हमें सभी मसीहियों से प्रेम करना है– हमें कहा गया है कि हम "सबके साथ भलाई करें, विशेष करके विश्वासी भाइयों के साथ।" 1 यूह. 3:11, गलातियों 6:10

ii. हमारे प्रेम का स्त्रोत परमेश्वर है।

क. परमेश्वर प्रेम है। 1 यूहन्ना 4:8

ख. हमारे पापी होने के बावजूद परमेश्वर ने हम से प्रेम किया है। रोमियों 5:8-10

ग. इसलिये कि पहले परमेश्वर ने हम से प्रेम किया, हमें भी दूसरों से प्रेम करना चाहिये। 1 यूहन्ना 4:19

घ. प्रेम की सर्वोच्च अभिव्यक्ति यीशु के द्वारा क्रूस पर दिये गये आत्म-बलिदान में मिलती है। 1 यूहन्ना 4:10

ड़. इसलिये कि परमेश्वर प्रेम है, मसीही होने का सारांश प्रेम है। मत्ती 22:37-39

च. प्रेम व्यवस्था की परिपूर्णता है। रोमियों 13:8-10

छ. इसलिये कि परमेश्वर का आत्मा हम में रहता है, हम हमारे हृदयों में

परमेश्वर के प्रेम को, और उन सभी गुणों सहित जो उसके प्रेम से जुड़े हैं, अनुभव कर सकते हैं। 1 कुरि. 13:4-7

ज. परमेश्वर हम से प्रेम करता है इसलिये बार-बार हमें अनुशासित भी करता है। इब्रानियों 12:6-11

झ. परमेश्वर के प्रेम से हमें कोई अलग नहीं कर सकता। रोमियों 8:31-39

iii. प्रेम और मसीही एकता के बारे में कुछ गलत धारणाएं:

क. संस्थागत एकता को आत्मिक एकता समझने की गलती अक्सर होती है। कुछ लोग संस्थागत रूप से तो संगठित होते हैं परन्तु आत्मिक रूप से नहीं होते।

ख. संप्रदायवादी शुद्धता को आत्मिक एकता समझने की गलती अक्सर होती है।

1. जिस तरह से यह अनिवार्य नहीं कि संस्थागत एकता है तो आत्मिक एकता होगी ही, वैसे ही संस्थागत विभाजन है तो आत्मिक विभाजन होगा ही यह अनिवार्य नहीं।
2. संस्थागत भिन्नताएं होने के बावजूद हम में परमेश्वर के प्रेम पर आधारित एकता होनी चाहिए।
3. डिनॉमिनेशन-वाद: कुछ डिनॉमिनेशन्स् में मसीही एक दूसरे के अधिक घनिष्ठ होते हैं, परन्तु वे अपने डिनॉमिनेशन से बाहर वालों से प्रेम करने में असफल रहते हैं।
4. संप्रदाय (कल्टस्): कुछ संप्रदाय के लोग आपस में परमेश्वर का प्रेम होने का दावा करते हैं, परन्तु उनकी शिक्षा या सिद्धान्त के गलत होने के कारण उनका प्रेम दोषपूर्ण होता है।

iv. सच्ची आत्मिक एकता और प्रेम का परिणाम एक संगठित, शुद्ध, प्रेमी कलीसिया होता है।

1. ऐसी कलीसिया एक सुव्यवस्थित कलीसिया होगी। कुलु. 2:5
2. ऐसी कलीसिया निष्कपट आनन्द और स्नेही समुदाय का आनन्द लेगी। रोमि. 12:9-16
3. ऐसी कलीसिया दूसरों के प्रति सेवा के कार्यों में आदर्श बनेगी। गलातियों 5:13
4. फ्रांसिस शॉफर ने कहा है, "सत्य के साथ प्रेम नहीं है तो वह सत्य नहीं; और प्रेम के साथ सत्य नहीं है तो वह प्रेम नहीं।"

पाठ 21

मसीह के शिष्य का चिन्ह-2

v. परमेश्वर के प्रेम पर आधारित अच्छे संबंधों को कैसे बनाएं:

क. हम से यदि कुछ भी गलत हो जाता है तो हमें देरी किये बिना क्षमा मांगनी चाहिये। याकूब 5:16

1. सिद्धान्त से संबंधी समस्याएं विभाजित नहीं करतीं, परंतु प्रेम से संबंधी समस्याएं विभाजन लाती हैं।
2. दूसरों की कटु आलोचना करने से बचें: अपने जीवन साथी, मित्र, सहकर्मियों और अन्य विश्वासियों की। फिले. 4:8

ख. एक दूसरे को क्षमा करें। 2 कुरि. 2:7

1. यीशु ने हमें क्षमा किया और धर्मी ठहराया। रोमियों 5:9
2. जैसे मसीह ने हमें क्षमा किया है, वैसे ही हमें भी दूसरों को क्षमा करना है। कुलु. 3:13

ग. असहमतियां होने पर भी हमें क्षमा दिखानी है। मत्ती 5:25-26, 1 कुरि. 6:1-8

1. विश्वासियों को दूसरों के साथ मेल या शांति रखने का प्रयास करना चाहिये। 1 कुरि. 16:11
2. संसार के लोग दूसरों की कीमत पर अपना लाभ उठाना चाहते हैं; विश्वासियों में ऐसी बात नहीं होनी चाहिए।

घ. इस प्रेम में प्रेम पूर्वक किसी का सामना करने के लिए भी स्थान है।

1. हमें प्रेम में होकर परमेश्वर के सत्य को बताना है। इफि. 4:12
2. प्रेरित पौलुस ने कुरिन्थ के विश्वासियों को अपने समूह के एक पापी का सामना करने को कहा। हमें परमेश्वर की पवित्रता से समझौता नहीं करना है। 1 कुरि. 5:1-5
3. एक विश्वासी को सुधारने के पश्चात् हमें उसे क्षमा करना चाहिये और उसके प्रति अपने प्रेम की पुन: पुष्टि करनी चाहिये। 2 कुरि. 2:5-8
4. मसीही सुधार के द्वारा एक पापी को मसीह की देह की सहभागिता

में पुनः स्थापित करने का एक सुअवसर होता है। लूका 15

निष्कर्ष : शिष्य का चिन्ह क्या है?

1. हम में परमेश्वर का प्रेम एक शिष्य होने का चिन्ह है, जो हमारे सेवा के कार्यों और विश्वासियों की एकता में दिखता है।
2. इस प्रेम का परिणाम यह है कि संसार मसीह पर विश्वास करेगा।
3. हमें एक प्रेमरहित संसार में, एक प्रेमी कलीसिया होना है।

पाठ 22

यीशु मसीह का खरा शिष्य - 1

परिचय: यीशु ने लोगों की बड़ी भीड़ को सिखाया और प्रचार किया। परन्तु उसने अपना पृथ्वी पर का अधिकांश समय शिष्यों के एक छोटे और चुने हुए समूह को सिखाने में बिताया। यीशु मसीह के सच्चे शिष्य की क्या विशेषताएं हैं?

1. भीड़ यीशु के पीछे रोटी, चमत्कार, चंगाई और छुटकारा पाने के लिए चली आती थी। क्या भीड़ में सभी लोग यीशु के सच्चे शिष्य थे? यूहन्ना 6:24-27, यूहन्ना 6:66-68
2. पुनरुत्थित यीशु को बहुतों ने देखा था, जिनमें ''एक ही समय में पांच सौ से अधिक भाई'' शामिल थे। क्या ये सभी सच्चे शिष्य थे? 1 कुरि. 15:4
3. बारह ने यीशु के साथ तीन वर्ष तक यात्रा की।
4. बारह में से तीन विशेष रूप से यीशु के घनिष्ट थे। मत्ती 17:1
5. उनमें एक शिष्य विशेषकर यीशु के अधिक घनिष्ट था जिसने बाद में यीशु की मां की देखभाल की। यूह. 21:7, 21-22

i. सच्चे शिष्य यीशु से किसी भी व्यक्ति या किसी भी वस्तु से अधिक प्रेम करते हैं। लूका 14:26

क. यीशु एक मज़बूत तुलना के द्वारा इस विषय पर बल देता है।
   1. यीशु से किए जाने वाले प्रेम की तुलना में अन्य प्रेम घृणा के समान हैं।
   2. यीशु कह रहा है कि शिष्य यीशु की तुलना में अपने परिवार को कम महत्व देता है।
   3. हमें अपने परिवार की देखभाल करनी है, यदि ऐसा नहीं कर रहे हैं तो हम अपने विश्वास का इन्कार कर रहे हैं। 1 तीमु. 5:8

ख. यीशु के प्रति हमारा जो प्रेम है उसके साथ कोई और प्रेम प्रतिस्पर्धा न करे। लूका 14:20
   1. हमें मसीह को अपने जीवन की प्राथमिकता बनाना है। फिलि. 3:7-8

2. शिष्यों ने यीशु के पीछे चलने के लिये अपने व्यक्तिगत जीवन छोड़ दिये थे। लूका 5:11

ग. अब्राहम की स्वेच्छा, जो उसने इसहाक को बलिदान करने के लिए दिखाई थी, ऐसे ही प्रेम का एक उदाहरण है। उत्प. 22:9-12

घ. यदि हम अपनी प्राथमिकताएं सही रखेंगे तो हम प्रतिफल पायेंगे। मर. 10:28-30

ii. शिष्य अपने आप का इन्कार करते हुये क्रूस उठाता है। लूका 14:27

क. बीते समय में, क्रूस का अर्थ स्वयं की मृत्यु से था, परन्तु आज बहुतेरे लोग क्रूस उठाने का अर्थ स्व-प्रगति के साधन के रूप में लगाते हैं। मत्ती 10:38-39, 16:24; मर. 8:34

ख. आपका बोझ आपको अहम् की मृत्यु की ओर ले जाता है। मर. 8:34-35

ग. आप प्रतिदिन अपना क्रूस उठाते हैं। लूका 9:23

घ. संसार क्रूस को मूर्खता मानता है और क्रूस का बैरी है। 1 कुरि. 1:18, फिलि. 3:18

iii. शिष्य अपना सब कुछ त्याग देता है। लूका 14:33 (मर. 10:21)

क. हम अपनी देह और संपत्ति के स्वामी नहीं हैं; हम उनके प्रबंधक हैं। रोमि. 12:1-2, लूका 18:2

ख. युवा धनी व्यक्ति में एक बात की कमी थी। उसके लिये उसकी भौतिक संपत्ति परमेश्वर के प्रति उसके प्रेम से अधिक महत्वपूर्ण थी। मत्ती 10:21

ग. यीशु हमें प्रेरित करता है कि हम पहले परमेश्वर के राज्य की खोज करें। मत्ती 6:33

घ. पौलुस ने उन सब बातों का त्याग किया जो यीशु से मेल नहीं खाती थीं (जो यीशु के विरोध में थीं)। फिलि. 2:8-10

पाठ 23

यीशु मसीह का खरा शिष्य - 2

iv. शिष्य वचन में बना रहता है। यूहन्ना 8:31

क. बने रहने का तात्पर्य दृढ़ रहने से है, जैसा हमें विवाह में रहना है। गला. 5:1

ख. जो मात्र आरंभ करता है, उसका उद्धार नहीं होगा; परंतु जो पूरा करता है वही उद्धार पायेगा। इब्रा. 12:1-3

ग. शिष्य, स्वामी के दूर चले जाने पर भी दृढ़ रहता है। फिलि.1:27

घ. शिष्य उनसे नहीं डरता जो उसका विरोध करते हैं। फिलि. 1:28

v. शिष्य, दूसरों से प्रेम करने के द्वारा परमेश्वर के प्रति अपने प्रेम को दिखाता है।

क. प्रेम मसीहियों का चिन्ह था। 1 यूह. 4:7-8

ख. ''प्रेम'' शब्द के लिए तीन यूनानी शब्द है: ''इरोस'', ''फिलियों'', और ''अगापे।'' यूहन्ना 13:35

1. अगापे : निस्वार्थ प्रेम
2. फिलियो: भाईचारे का प्रेम
3. इरोस: शारीरिक प्रेम

ग. हम में जो परमेश्वर का प्रेम होता है, वह हमारे भीतर दूसरों के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है। गला. 5:13-14

vi. शिष्य अधिक फल लाता है। यूह. 15:8

क. शिष्य की छंटाई होनी चाहिए ताकि अधिक फल लाये । यूहन्ना 15:2

ख. फल न लानेवाला दोषी ठहराया जाएगा। यूहन्ना 15:6

ग. हमें ऐसा फल लाना है जो सदा तक बना रहे। यूहन्ना 15:16

घ. आत्मा का फल हमारे परिवर्तित जीवनों में प्रकट होता है। गला. 5:22-25; 6:1-5

vii. शिष्य उस दौड़ को धीरज के दौड़ता है जिसे परमेश्वर ने उसके सामने रखा है। इब्रा. 12:1

क. शिष्य प्रभु में शक्ति और साहस पाता है। यहोशू 1:9

ख. हम अच्छी लड़ाई लड़ते हैं; हम दौड़ को पूरा करते हैं, हम विश्वास की रखवाली करते हैं। 1तीमु. 6:12

ग. शिष्य वैसे ही चलता है जैसे यीशु चला। 1यूह. 2:6

निष्कर्ष: विरोधाभास यह है कि मसीह के लिये जीने हेतु, शिष्य स्वयं के प्रति मर जाते हैं।

1. जो अपने जीवन को बचाने का प्रयास करता है वह उसे खोएगा। मत्ती 10:39
2. जो यीशु के लिए अपने जीवन को खोता है वह उसे पाएगा। मर. 8:35
3. जो पीछे चलता है उसे कीमत का पता लगा लेना अवश्य है। लूका 14:28
4. उदाहरण: भूमि पर गिरने वाला बीज जब मर जाता है तो बहुत फल लाता है। यूहन्ना 12:24

पाठ 24

युक्तिपूर्वक प्रार्थना और मध्यस्थता-1

बलवान को बांधकर दृढ़ गढ़ों को ढा देना

निम्नलिखित तीन अध्याय डॉ. एस.डी. पोनराज की पुस्तक ''कलीसिया निर्माण आन्दोलन के लिए युक्तियाँ'' के पाठ 1 से लिये गए हैं, जिन्हें संक्षिप्त करने के लिए कुछ संपादन कार्य किया गया है। जबकि डॉ. पोनराज, विशिष्ट रूप से कलीसिया स्थापना गतिविधि से संबंधित प्रार्थना के बारे में लिख रहे थे, जो कुछ भी वे बताते हैं वह समस्त महान आदेश की सभी सेवकाइयों के साथ बहुमूल्य रूप से लागू होता है।

परिचयः कलीसिया स्थापना गतिविधि युक्तिपूर्वक प्रार्थना और मध्यस्थता से आरंभ होती है और जारी रखी जाती है। कलीसिया स्थापना गतिविधि में प्रार्थना और मध्यस्थता का स्थान कोई और नहीं ले सकता। कलीसिया स्थापना गतिविधि को पूरी रीति से प्रार्थना में लिप्त होना चाहिए।

दोहरी आज्ञाः मध्यस्थता करना और शिष्य बनाना

प्रभु यीशु ने हमें आज्ञा दी है, ''पके खेत तो बहुत हैं पर मज़दूर थोड़े हैं। इसलिये खेत के स्वामी से विनती करो कि वह अपने खेत काटने के लिए मज़दूर भेज दें'' (मत्ती 9:37-38)। दूसरी आज्ञा वही है जिसे हम महान आदेश कहते हैं, ''इसलिये तुम जाओ, सब जातियों के लोगों को चेला बनाओ'' (मत्ती 28:19)। मेरी समझ में, दोनों ही महान आदेश का भाग हैं।

हमें यहां स्थापित की गई प्राथमिकता पर ध्यान देना चाहिये। मध्यस्थता और घोषणा करना दोनों साथ-साथ चलते हैं परन्तु लोगों के लिए मध्यस्थता करना पहले आता है और उसके पश्चात् सुसमाचार की घोषणा करना और शिष्य बनाना। यदी हम कलीसिया स्थापना गतिविधि में प्रभावी बनना चाहते हैं तो हमें इस प्राथमिकता को बनाए रखना होगा। जब तक हम उस स्थान के लिए जहां हमें भेजा गया है, और उन लोगों के लिए जिनके लिये हमें भेजा गया है प्रार्थना ना करें तब तक हम सफलता को नहीं देख सकते। जब तक हम एक विशिष्ट जन समूह या एक विशिष्ट भौगोलिक स्थान के लिए मध्यस्थता करने में विश्वासयोग्य नहीं है तब हमें सुसमाचार की घोषणा करने का कोई अधिकार नहीं है।

मिशन युक्ति के रूप में प्रार्थना

विश्व भर में प्रार्थना का संघटन करने वाले जौन रॉब का कहना है, "जहां सुसमाचार नहीं पहुंचा है ऐसे स्थानों में प्रार्थना मिशन के लिए परमेश्वर की सामर्थ को खोल देती है।"[1] इसके अतिरिक्त वह लिखते हैं, ''प्रार्थना मुख्य रूप से, एक जोड़ने वाली गतिविधि है। सबसे पहले प्रार्थना हमें परमेश्वर की सामर्थ और दिशा पाने से जोड़ती है, जबकि हम संसार के लिए प्रार्थना करते हैं और अपनी स्वयं की सेवकाई को आगे बढ़ाते हैं। दूसरा, जबकि हम अनपहुंचे हुये विश्व के लिए प्रार्थना करते हैं, यह हमें विशिष्ट अनपहुंचे जन समूहों से और उन मसीही कार्यकर्ताओं से जोड़ती है जो उनके बीच में कार्य कर रहे होते हैं। यह हमारे और उनके प्रयासों को परमेश्वर के साथ उसकी सर्वशक्ति में जोड़ती है, जिसकी सहायता के बिना इस प्रकार के सभी प्रयास अनन्तः निरर्थक हो जाते हैं।''[2] प्रार्थना की यह जानकारी हमारी मिशन युक्ति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाएगी।

डॉसन ट्राटमैन, नेविगेटर्स के संस्थापक ने इसे उत्तम रीति से कहा है: ''प्रार्थना किसी महान कार्य की *तैयारी* नहीं है, यह स्वयं एक महान कार्य है।'' प्रार्थना के और इससे संबंधित बातों, (अर्थात वचनबद्धता, पश्चात्ताप, परमेश्वर की बाट जोहना, उसकी इच्छा जानना और विनती एवं मध्यस्थता करने), के महत्व को छोटा आंकना, परमेश्वर के मिशन के लिए उस पर हमारी पूर्ण निर्भरता को समझने में असफल होना है।

हमारी समस्त व्यस्त योजनाओं के बीच, परमेश्वर और जिनके मध्य हम काम कर रहे हैं उन लोगों के मध्य, प्रार्थना के अनिवार्य संयोजन को बनाने से चूक जाने का खतरा रहता है। ऐसे खतरे से सावधानीपूर्वक बचना है, अन्यथा गतिविधि आगे नहीं बढ़ पाएगी।

युक्तिपूर्वक आत्मिक संसाधन के रूप में प्रार्थना

कलीसिया स्थापना गतिविधि के लिए प्रार्थना को एक युक्तिपूर्वक आत्मिक संसाधन के रूप में देखा जाना चाहिए। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि प्रार्थना प्रायः ''घरेलू समस्याओं'' और ''खरीददारी की सूची'' से ही संबंधित हो जाती है। अतः हमारी कलीसिया और गृह प्रार्थना सभाओं में व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओं और आवश्यकताओं के लिये प्रार्थना करना ही हमारी कार्य-सूची हो जाती है, बजाय इसके कि मिशन क्षेत्रों और अनपहुंचे लोगों के लिए प्रार्थना करें। बीमारों और ज़रूरतमंदों के लिए प्रार्थना करना आवश्यक है, परन्तु हमें प्रभु की आज्ञा ''पके खेत काटने को मज़दूरों को भेजने के लिए प्रार्थना करें'' को प्राथमिकता देनी चाहिये।

प्रेरित पौलुस ने अपने मिशनरी कार्य में प्रार्थना को एक युक्तिपूर्वक आत्मिक संसाधन के रूप में जाना था। इफिसियों को परमेश्वर के सभी हथियार धारण करने का निर्दश देते हुए, उसने समापन प्रार्थना करने के लिए उत्साहित करते हुए किया (इफि. 6:10, 11, 18, 19)।

पौलुस ने आत्मिक युद्ध में प्रार्थना को एक आत्मिक शास्त्र के रूप में सम्मिलित किया है। अत: लोगों को बुराई के चंगुल से छुड़ाने और उसके बाद उन्हें कलीसिया का रूप देने के लिए प्रार्थना को दुष्ट शक्तियों के गढ़ों को तोड़ने वाले आत्मिक संसाधन के रूप में देखा जाना चाहिए।

पाठ 25
युक्तिपूर्वक प्रार्थना और मध्यस्थता-2

युक्तिपूर्वक मध्यस्थता के बाइबलीय नमूने

बाइबल के सभी महान स्त्री और पुरुष महान मध्यस्थ रहे थे। उन्होंने मात्र अपने लिए ही नहीं परन्तु दूसरों के लिए भी प्रार्थना की। उनकी प्रार्थनाएं युक्तिपूर्वक और उन चुनौतियों पर केन्द्रित थी जिनका उन्होंने अपनी प्रार्थनाओं में सामना किया और तब तक बने रहे जब तक कि उन्होंने अपने मिशन को पा नहीं लिया। यहां बाइबल के कुछ नमूने हैं।

अब्राहम ने सदोम और अमोरा के लिए मध्यस्थता की। परमेश्वर ने उसकी प्रार्थनाओं का जवाब दिया और लूत तथा उसके परिवार को छुड़ाया। इसी कारण से अब्राहम को ''परमेश्वर का मित्र'' कहा गया (उत्प. 18:16-33)। आज हमें भारत के गांवों और नगरों और संसार भर के लिए मध्यस्थता करने हेतु बहुत से ''परमेश्वर के मित्रों'' की आवश्यकता है, ताकि परमेश्वर उन्हें नाश ना करे।

मूसा ने इस्राएल के लोगों के लिए मध्यस्थता की प्रार्थना की थी। मूसा परमेश्वर और इस्राएल के लोगों के बीच खड़ा हुआ, ताकि वह उनका नाश न करे (देखें निर्गमन 32)। प्रभु नरम पड़ गया और उसने इस्राएल के लोगों का नाश नहीं किया।

राजा यहोशापात की मध्यस्थता की प्रार्थना। यहोशापात एक निराशाजनक कठिन परिस्थिति में था। दो शत्रु जातियों--मोआब और अम्मोन--की विशाल सेनाएं उससे लड़ने को आई थीं। यहूदा एक छोटी सेना वाला छोटा देश था। यहोशापात युद्ध के लिए तैयार नहीं था। इस संदर्भ में हम देखते हैं कि ''यहोशापात यहोवा की खोज में लग गया'' (2इति 20:3-4)। उसने संयुक्त प्रार्थना के लिए लोगों की एक सभा बुलायी। उसने उपवास और प्रार्थना की घोषणा की। उसने युद्ध लड़ने के विपरीत, प्रार्थना और मध्यस्थता की प्रार्थना को एक कूटनीतिक हथियार के रूप में किया। उसने अपनी असहायता और निराशा के विरुद्ध प्रार्थना की, ''यह जो बड़ी भीड़ हम पर चढ़ाई कर रही है, उसके सामने हमारा तो बस नहीं चलता, और हमें कुछ सूझता नहीं कि क्या करना चाहिए परन्तु हमारी आंखें तेरी ओर लगी हैं'' (2 इति. 20:12)।

राजा यहोशापात की प्रार्थना अम्मोन और मोआब की सेना पर नहीं, परमेश्वर

पर केन्द्रित थी। यह परमेश्वर केन्द्रित और परमेश्वर आधारित प्रार्थना थी। प्राय: हम प्रार्थना में इसलिए कमज़ोर पड़ जाते हैं क्योंकि हमारी प्रार्थनाओं में हमारा ध्यान हमारी समस्याओं और आवश्यकताओं पर होता है, न कि उस परमेश्वर पर जो हमारी समस्याओं का समाधान करने और हमारी आवश्यकताओं को पूरा करने के योग्य हैं।

नहेम्याह एक महान मध्यस्थ था। उसने अपने मिशन का आरंभ अपने घुटनों पर आकर किया। उसने मात्र अपने लिए ही नहीं परन्तु अपने लोगों के लिए भी प्रार्थना की (नहेम्याह 1:6)।

यीशु मसीह – महान मध्यस्थ हैं। हमारे प्रभु यीशु मसीह ने अपने शिष्यों के लिए प्रार्थना और मध्यस्थता करने के द्वारा एक आदर्श को प्रस्तुत किया है। हम, उस शास्त्रभाग में जिसे हम सामान्यता'' महायाजकीय प्रार्थना'' कहते हैं, पढ़ते हैं, ''मैं यह विनती नहीं करता कि तू उन्हें जगत से उठा लें; परन्तु यह कि तू उन्हें उस दुष्ट से बचाए रखा ताकि वे भी सत्य के द्वारा पवित्र किये जाएं (यूहन्ना 17:15-19)। गतसमनी बाग में उसने लहू की बूंदों के पसीना को बहाकर प्रार्थना की (लूका 22:44)।

प्रार्थना अनपहुंचे लोगों के बीच सफलता लाती है

जब प्रार्थना को आत्मिक साधन और आत्मिक हथियार के रूप में उपयोग किया जाता है तब हम अनपहुंचे जन समूहों के बीच सफलता का अनुभव करते हैं। इसी कारण कलीसिया स्थापन आन्दोलन विकसित हुआ है। बिहार में हमने जिस सफलता को देखा है वह इसका एक अच्छा नमूना है। कई दशकों से, यह राज्य सुसमाचार के लिए बन्द था। मिशन इतिहास में, बिहार को मिशन और मिशनरियों के कब्रिस्तान के रूप में जाना जाता था। इसका मूल कारण वही था जैसा कि प्रेरित पौलुस ने लिखा है, ''अंधकार की शक्तियों ने लोगों की आंखों को अंधा कर दिया जिससे वे सुसमाचार की ज्योति को नहीं देख सकते।''

एक वरिष्ठ मिशनरी रेव्ह डी. सेमराज ने, जिन्होंने 17 वर्ष तक बिहार में कार्य किया, इसे स्पष्ट किया है: ''हमने प्राय: अंधकार की उन शक्तियों को अनुभव किया जिन्होंने बिहार को निगल रखा था, और जैसे ही हमने इस राज्य में प्रवेश किया था, हमने शैतानी शक्तियों की उपस्थिति को अनुभव किया था। प्रार्थना और सेवकाई के लिए बिहार आए हुये बहुत से मसीही अगुवों और प्रार्थना योद्धाओं ने भी ऐसा ही अनुभव किया था। थोडा समय भी प्रार्थना करना बहुत कठिन था। आत्मिक रूप से, बिहार को भारत के सब से अधिक अंधकारमय स्थानों में से एक

माना जाता था।'[4]

अनेक दशकों से, संसार भर में परमेश्वर के लोग, बिहार में महत्वपूर्ण कार्य होने के लिये प्रार्थना करते रहे हैं। उन में से बहुतेरे कभी बिहार नहीं आये हैं, और कुछ ने वहां काम तो किया है परंतु कुछ स्पष्ट परिणाम नहीं देखा था, परंतु उन्होंने अनेक वर्षों तक मध्यस्थता की प्रार्थना करना जारी रखा था। अंततः, उनकी प्रार्थनाओं को उत्तर दिया गया और आसुंओं को स्वीकार किया गया और महत्वपूर्ण कार्य को देखा गया। 1990 में, सुसमाचार के लिये द्वार खुल गया और लोगों ने सुसमाचार को प्रतिउत्तर दिया। आज बिहार सुससमाचार के लिये विस्तृत रीति से खुला है, और बहुतेरे अनपहुंचे स्थानों में बहुतेरी कलीसिया स्थापन गतिविधियां चल रही हैं। इस प्रकार हमारी प्रार्थनायें कभी व्यर्थ नहीं गईं। संभव है कि परमेश्वर देर करे, परंतु वह कभी इन्कार नहीं करता, और वह उत्तर देगा।

पाठ 26
युक्तिपूर्वक प्रार्थना और मध्यस्थता - 3

युक्तिपूर्वक मध्यस्थता के लिए आत्मिक नक्शा बनाना

आत्मिक नक्शा बनाना यह गढ़ों को या किसी भी स्थिति के मुख्य कारणों को पहचानने की प्रक्रिया है, परन्तु सामान्यत: उन समस्या वाली स्थितियों के जो आत्मिक रीति से संवेदनशील हैं ताकि शैतानी गढ़ों का नाश किया जाये और आत्माओं को छुड़ाने के लिए परमेश्वर के गढ़ों का निर्माण किया जाये, जिससे हमारा उन्हें छुटकारा दिलाने का उद्देश्य पूरा हो।

आत्मिक नक्शा बनाना यह कलीसिया स्थापना गतिविधि और समाज के परिवर्तन के लिये सबसे सामर्थी और प्रभावी उपकरण है। यह संपूर्ण समुदाय को उस क्षेत्र में आत्मिक गतिशीलता को देखने और समझने में समर्थ करता है, कि निवासियों पर उनका क्या प्रभाव है, और उसे हटाने के लिए क्या किया जाना आवश्यक है। इस प्रकार की आत्मिक गतिविधि प्रचार-कार्य और कलीसिया स्थापन के द्वार को खोलेगी। अत: आत्मिक नक्शा बनाने का उद्देश्य विरोधी और अनपहुंचे जन समूहों के बीच कलीसिया स्थापना गतिविधि को विकसित करना है।

आत्मिक नक्शा बनाने के अभियान का आरंभ एक दल से होता है। अपने क्षेत्र की खोज करने के द्वारा वे मध्यस्थों को जानकारी दे पाने के योग्य हो सकेंगे। इस प्रकार की जानकारी से मध्यस्थों को दुष्ट शक्तियों के गढ़ों के आस-पास प्रार्थना यात्रा करने और युक्तिपूर्वक प्रार्थना करने में सहायता मिलती है।

युक्तिपूर्वक मध्यस्थता और प्रभावी प्रचार-कार्य के बीच संतुलन रखना

सबसे बड़ी चुनौती यह है कि युक्तिपूर्वक मध्यस्थता और प्रभावी प्रचार-कार्य के बीच संतुलन कैसे रखा जाए, क्योंकि एक प्रभावी कलीसिया स्थापन गतिविधि को बढ़ाने के लिए हमें दोनों की ही आवश्यकता है। इसमें एक को दूसरे से अधिक महत्व देने का खतरा रहता है। जबकि कुछ को विशिष्ट रूप से मध्यस्थता के लिए बुलाया गया है और दूसरों को कलीसिया की स्थापना की बुलाहट मिली है, यह महत्वपूर्ण है कि कलीसिया स्थापक भी मध्यस्थ होने चाहिये। मेरा मानना है कि हमें उस बात का पालन करना चाहिए जो ब्रिटीश पुनर्जागरणवादी, लेनर्ड रेवनहिल, ने

कहा है: ''ऐसे प्रार्थना करें जैसे कि काम पर आपका विश्वास नहीं है, और ऐसे काम करें जैसे कि प्रार्थना पर आपका विश्वास नहीं है।''

हम मूसा में एक अच्छे बाइबलीय नमूने को देखते हैं, जिसने पहाड़ पर खड़े होकर, अपने हाथ ऊपर उठाए और अमालेकियों के विरुद्ध युद्ध जीतने के लिए लोगों की ओर से मध्यस्थता की (निर्गमन 17-9-13)। दूसरा अच्छा नमूना नहेम्याह में मिलता है, जिसने लोगों को शहरपनाह पर लोगों को नियुक्त किया, एक हाथ से काम करने और दूसरे हाथ में तलवार को पकड़े हुए रखने को कहा (नहे. 4:16-18)। नये नियम में प्रेरितों ने यह निर्णय लेकर कि ''हम तो प्रार्थना में और वचन की सेवा में लगे रहेंगे'' (प्रेरित. 6:4) अपनी प्राथमिकता को सही स्थान पर रखा।

मध्यस्थता और घोषणा के बीच संतुलन रखना, कलीसिया स्थापना गतिविधि को आरंभ करने और बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। इसके लिए दल के कार्यकर्ताओं की आवश्यकता हो सकती है जो प्रार्थना और कलीसिया निर्माण के लिये अपनी अपनी भागीदारी को बांट सकें। परन्तु आन्दोलन की अगुवाई करनेवाला व्यक्ति युक्तिपूर्वक प्रार्थना और मध्यस्थता का व्यक्ति होना चाहिए।

मध्यस्थों के लिए कुछ सावधानियाँ

स्टीव कोकरेन, यूथ विद मिशन के एक उच्च अगुवा जिन्होंने कई वर्षों तक भारत में सेवा कार्य-किया, मध्यस्थों को निम्नलिखित सावधानियाँ देते हैं। ये विचार करने के योग्य हैं।[5]

1. हमें युक्तिपूर्वक मध्यस्थता को कभी भी दैनिक, विश्वसनीय प्रचार-कार्य और मसीही सेवा का स्थान नहीं देना चाहिए। युक्तिपूर्वक मध्यस्थता करने पर सारा बल देते हुए एक भावना यह हो सकती है कि बस यही एक काम है जिसे हमें करने की आवश्यकता है।
2. हमें हमारी आत्मा में अहंकारी रवैया आने देने से टालना चाहिये। हमें इससे रक्षा करने की आवश्यकता है। हम जब अपनी प्रार्थना कोठरी और प्रार्थना सभाओं में होते हैं, हम, उस अधिकार के आधार पर जो हमें युद्ध करने हेतु मसीह में मिला है, अपने आप को ''आत्मिक रूप से 10 फुट लंबा'' अनुभव करते हैं, परन्तु हमें मध्यस्थता में प्राप्त होने वाली ''मसीही की नम्रता'' के द्वारा इसे संतुलित करना अवश्य है।
3. आत्मिक युद्ध में होने पर, हमें सावधान रहने की आवश्यकता है कि लोगों की, उनके अपने संदर्भ में जो वास्तविक आवश्यकताएं है उनके प्रति हम

चुक ना जायें। प्रभावी प्रार्थना हमें गढ़ों के ढाते हुये देखने के योग्य करे, परन्तु यह हमें हमारे आस-पास के लोगों के प्रति दया और हार्दिक टूटन से अलग न करे।

अन्तिम टिप्पणियाँ

1. जौन डी. रॉब, *फोकस! द पावर ऑफ पीपल ग्रुप थिंकिंग* । मिशन एजूकेशनल बुक्स, 1944, पृ. 100,101
2. आई.बी.आई.डी. 98,99
3. आई.बी.आई.डी. 100,101
4. सैमूएल देवावरम् सामराज, द *ट्रान्सफॉरमेशन इन बिहार स्टेट, माय रिफ्लेक्शन ऑन द प्रेसेन्ट मूव ऑफ द होली स्पिरिट इन बिहार स्टेट* । (अप्रकाशित सामग्री)
5. एस.डी पोनराज और जौन डी. रॉब, *ट्रान्सफॉर्म यॉर वर्ल्ड थ्रू प्रेअर* । मिशन एजुकेशनल बुक्स, 1999

पाठ 27

मिशन के लिए परमेश्वर द्वारा सुसज्जित किया जाना: धर्मी जनों के लिए उसके विशेष वरदान

परिचय: परमेश्वर अपनी संतान को, उसके तथा दूसरों की सेवा करने और अपने राज्य के कार्य को पूरा करने के लिए विशेष प्रतिभाएं और योग्यताएं देता है। बाइबल इन योग्यताओं को आत्मा के वरदान कहती है।

1. परमेश्वर का आत्मा अपने आप को, नये नियम की तुलना में, पुराने नियम में भिन्न रूप से प्रगट करता है

पुराने निमय में	नये नियम में
आत्मा एक व्यक्ति पर अस्थायी रूप से अधिकार रखता है।	आत्मा एक व्यक्ति पर स्थायी रूप से अधिकार रखता है।
आत्मा का कार्य आंशिक होता है।	आत्मा का कार्य संपूर्ण होता है।
परमेश्वर और मनुष्यों के बीच याजक, न्यायी, भविष्यद्वक्ता और राजा मध्यस्थ होते हैं।	अब यीशु हमारा मध्यस्थ है, जो हमारा न्यायी और अनन्त राजा है।

ii. परमेश्वर का पहला और महान वरदान उद्धार है। रोमियों 6:23, 8:9-11

iii. नये नियम में विश्वासियों को परमेश्वर द्वारा दिये आत्मा के वरदानों की चार सूचियां हैं।

रोमियों 12:4-8; 1कुरि. 12:4-31; 13:3; 14:26; इफिसियों 4:4-16; 1 पतरस 4:10-11

(नीचे दी गई तालिका में, 'र' रोमियों की सूची और 'क' 1 कुरि. की सूची, इ

इफिसियों की सूची और प पतरस की सूची के लिए है।)

1.	भविष्यद्वक्ता (प्रोत्साहन)	र क इ प
2.	शिक्षक (ज्ञान) (बुद्धि)	र क इ
3.	सहायता (सेवा)	र क
4.	दानशीलता (उदारता)	र क
5.	प्रबंधन	र क
6.	प्रेरित (मिशनरी)	क इ
7.	दया	र
8.	विश्वास	क
9.	चमत्कार	क
10.	चंगाई	क
11.	आत्माओं की पहचान	क
12.	अन्य भाषा	क
13.	अन्य भाषा का अनुवाद	क
14.	गीत	क
15.	प्रकाशन	क
16.	शहीद	क
17.	पास्टर (चरवाहा)	इ
18.	सुसमाचार प्रचारक	इ

iv. पवित्र आत्मा के वरदानों की चारों सूचियों की समीक्षा:

क. **1 कुरिथियों 12:4-11:** ''बुद्धि, ज्ञान, विश्वास, चंगाई, चमत्कार, भविष्यद्वाणी, आत्माओं की पहचान, अन्य भाषा, अनुवाद''

1. कुरिन्थियों को लिखी गई पौलुस की पत्री में, वह अन्य भाषा के वरदान पर अत्यधिक बल दिये जाने की आत्मिक शारीरिकता को संबोधित (और सुधारने का प्रयास) कर रहा था (1कुरि. 3:3)
2. यह सूची आत्मा के वरदानों की चारों सूचियों में सब से बड़ी है (रोमि. 12:28 में इसी सूची को नये रूप में दोहराया गया है)।
3. पौलुस कहता है कि सबसे बहुमूल्य वरदान भविष्यद्वाणी करने का है। 1 कुरि. 14:1
4. परन्तु भविष्यद्वाणी से भी बड़ा प्रेम है। 1कुरि. 13:1 व 13:13

ग. रोमि. 12:6-8: भविष्यद्वाणी, सेवा, सिखाना, उपदेश देना, दान देना,

अगुवाई करना, दया।''

1. इस पत्र में, पौलुस एक दृढ़ कलीसिया से बात कर रहा है, जिसकी नींव विश्वास पर है और जो सुनियोजित है।
2. वह यहां सुधारने का काम नहीं कर रहा है; वह आदेश दे रहा है।
3. वह लिखता है कि वरदान परमेश्वर के उस अनुग्रह के अनुसार दिये गए हैं जो हम में से प्रत्येक को दिया गया है।

ख. **इफिसियों 4:11-12** ''प्रेरित, भविष्यद्वक्ता, सुसमाचार सुनाने वाले, पास्टर, शिक्षक''

1. इफिसियों में, पौलुस आत्मा की सेवकाइयों के बारे में बता रहा है।
2. जैसे रोमियों को वैसे ही यहां भी पौलुस का लक्ष्य सुधारना नहीं परंतु उन्नत कराना है।
3. उन्हें मसीह की देह (अर्थात् विश्वासियों) की उन्नति करने के लिये धर्मी जनों को सुसज्जित करना है। इफि. 4:12

घ. **1 पतरस 4:7-11** ''बोलना, सेवा करना''

1. वह वचन के वरदानों और सेवा के वरदानों के बीच अन्तर करता है।
2. कुछ लोगों को लगता है कि पतरस अतिथि-सत्कार को आत्मिक वरदान के रूप में जोड़ रहा है (पद 9)।
3. वरदान दूसरों की सेवा करने के लिये हैं ताकि परमेश्वर को महिमा मिले। 1 पत. 4:11

v. आत्मिक वरदानों के बारे में कुछ सामान्य अवलोकन:

क. आत्मा के वरदान एक महत्वपूर्ण विषय है: इनके बारे में 100 से भी अधिक बाइबल पद हैं।

ख. कुछ वरदानों के साथ घमण्डी हो जाने का खतरा भी है, परन्तु हम सब को स्मरण रखना है कि वरदान <u>अनुग्रह</u> है।

ग. वरदानों का उपयोग अन्य विश्वासियों की उन्नति के लिए किया जाना है और ये सभी के उपयोग के लिये हैं।

घ. परमेश्वर वरदानों का वितरण अपनी इच्छा के अनुसार करता है।

ड. किसी भी विश्वासी के पास सभी वरदान नहीं होते, परन्तु प्रत्येक विश्वासी के पास कम से कम एक होता है।

च. बीस से भी अधिक वरदानों को सूचीगत किया गया है। कलीसिया में किसी की भी कमी नहीं है।

छ. वरदानों और कार्यों में विविधता है, परन्तु देह की एकता पर बल दिया

गया है।

ज. सभी वरदानों का उपयोग प्रेम के संदर्भ में किया जाना चाहिए।

झ. वरदानों की चार सूचियाँ संपूर्ण होने के लिए नहीं हैं। प्रत्येक दूसरी से भिन्न है। इस विविधता से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इन में आत्मा के सब ही नहीं परंतु कुछ ही वरदान बताये गये हैं।

निष्कर्ष: पवित्र आत्मा ने परमेश्वर की संतान को विशेष योग्यताएं दी हैं ताकि वे एक दूसरे की उन्नति करने के लिये सक्षम हों और उसके राज्य का काम करें। परमेश्वर ये विशेष वरदान हमें उसके महान आदेश को पूरा करने हेतु सहायता के लिए देता है।

पाठ 28

सुसमाचार संदेश को प्रासंगिक बनाना

यह अध्याय डॉ. एस.डी. पोनराज के कलीसिया निर्माण आन्दोलन की कूटनीतियाँ से उद्धृत व संक्षिप्त किया गया है। प्रासंगिकरण पर अतिरिक्त शिक्षा महान आदेश के सिद्धान्त पाठ्यक्रम में दी गई है।

परिचय: सुसमाचार का प्रासंगिकरण यह है कि परमेश्वर के सत्य को इस तरह से बताना कि लोग इसे अपनी परिस्थिति में समझ सकें, चाहे उनकी परिस्थिति कैसी भी हो। प्रासंगिकरण का अर्थ यह है कि संबंधित धारणाओं या आदर्शों को दी गई परिस्थिति में उपयुक्त बनाना। मसीही रीति रिवाज़ों के संदर्भ में, यह परमेश्वर के कभी न बदलने वाले वचन को प्रासंगिता के सदा बदलते रहने वाले अंदाजों में व्यक्त करने का प्रयास है।

1. प्रासंगिकरण की आवश्यकता: सुसमाचार को, किसी व्यक्ति की और उसके समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से, अर्थपूर्ण एवं उसकी परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त बनाते हुये प्रस्तुत करना ही प्रासंगिकरण कहलाता है। दूसरे शब्दों में, सुसमाचार को लोगों की उस परिस्थिति में उपयुक्त बनाया जाता है जिसमें वे रह रहे होते हैं।
2. सुसमाचार के एक अर्थपूर्ण प्रासंगिकरण में मसीही मिशन के कम से कम तीन क्षेत्र सम्मिलित होने चाहिए:

1. बाइबल का केन्द्रीय संदेश क्या है और उसकी बाह्य रूप-रेखा क्या है
2. सुसमाचार के थियोलोजी की व्याख्या करना
3. सुसमाचार की विषय-वस्तु को बताना और (3) सुसमाचार के लिए प्रतिउत्तर का बोध कराना

3. किसी विशिष्ट परिस्थिति में बातचीत करने का यीशु का उदाहरण – यीशु एक प्रभावी संचारक अर्थात् बातचीत करनेवाला था। वह अलग-अलग लोगों को परमेश्वर के राज्य का एक ही सरल संदेश बताने में निपुण था। उसने संदेश की विषय-वस्तु को नहीं बदला परन्तु बातचीत करने के ढंग को अवश्य बदला था।

1. यहूदी धार्मिक अगुवों के साथ वह अधिक तर्क-वितर्क करते हुये बात

करता था। यीशु ने नया जन्म के विषय में बात आरंभ करते हुये कहा, ''तेरा नये सिरे से जन्म लेना आवश्यक है।'' यह एक प्रभावी वार्तलाप करने की विधि थी।

2. सामरी स्त्री के साथ यीशु की बातचीत का ढंग सरल था, और उसकी जल की दैनिक आवश्यकता के साथ जोड़ा गया था। इस परिस्थिति में, यीशु ने उसकी सहायता की कि वह ''जीवित जल'' की आत्मिक आवश्यकता को जान सके। इस प्रकार यीशु ने उसकी उस आवश्यकता से बातचीत की जिसे वह अनुभव कर रही थी। बातचीत का यह ढंग प्रभावी रहा और उस स्त्री ने प्रतिउत्तर दिया।
3. मछुवारों से यीशु ने कहा, ''मेरे पीछे आओ और मैं तुम्हें मनुष्यों के मछुवारे बनाऊंगा।'' किसानों से उसने बीज की गुणवत्ता, बीज बोने और फसल काटने के बारे में बात की। प्रत्येक समूह ने उसके प्रासंगिक बनाये गये संदेश को समझा और उसे प्रतिउत्तर देने के योग्य हो सका।
4. परिस्थिति के अनुसार बातचीत करने का पौलुस का उदाहरण

1. प्रेरित पौलुस एक कुशल वार्तालाप-कर्ता था, वह अपने सहकर्मी अपुल्लोस के समान बोलने में निपुण नहीं था तथापि वह अपने सुनने वालों के साथ अपनापन स्थापित कर सकता था (2 कुरि. 10:10; 1 कुरि. 2:1-5)। वह कहता है, ''मैं यहूदियों के लिये यहूदी बना कि यहूदियों को खींच लाऊं व्यवस्थाहीनों के लिये मैं व्यवस्थाहीन सा बल कि व्यवस्थहीनों को खींच लाऊं। मैं हर एक मनुष्यों के लिये सब कुछ बना कि किसी न किसी रीति से कई एक का उद्धार कराऊँ''(1 कुरि. 9:20-22)।
2. पौलुस ने भिन्न लोगों को सुसमाचार बताने के लिये भिन्न तरीकों का उपयोग किया। आइये इन में से कुछ तरीकों पर ध्यान दें।
    1. पहला, पुराने नियम के वचनों का उपयोग करने का तरीका: पौलुस यहूदी लोगों तक पहुंचाने के लिये यहूदी आराधनालय गया। उसकी आराधनालय के समुदाय से बातचीत करने का तरीका उनकी परिस्थिति के अनुसार था। उसने पुराने नियम के वचनों का उपयोग किया क्योंकि यहूदी पुराने नियम की व्यवस्था और भविष्यद्वाणी से परिचित थे। (प्रेरित. 13:16-43; प्रेरित. 28:23)।
    2. दूसरा, स्थानीय धार्मिक संस्कृति का उपयोग करने का तरीका: पौलुस अन्यजातियों और यूनानियों तक यूनानी संस्कृति के दृष्टिकोण के साथ पहुंचा। उदाहरण के लिए, एथेन्स में पौलुस ने यूनानी दार्शनिकों के

उद्धरणों का उपयोग करते हुए सुसमाचार का अर्थ स्पष्ट किया (प्रेरित. 17)। पौलुस उनकी धार्मिक कट्टरता की प्रशंसा कर सका और इसके द्वारा उनके विश्वास और प्रथाओं के साथ अपनापन स्थापित कर सका और उनकी परिस्थिति में उन्हें सुसमाचार बता पाया। इस प्रकार पौलुस यूनानियों और रोमियों तक पहुंचने में ''व्यवस्थाहीन'' बना।

3. तीसरा, आत्मिक शक्ति से सामना करने का तरीका: प्रेरितों के काम अध्याय 19 में हम पौलुस को अन्यजातियों एक और समूह तक पहुंचते हुये देखते हैं। वे इफिसुस के जीववादी या इफिसुस के प्रचलित धर्म के लोग थे। वे अलौकिक शक्तियों, जैसे कि जादू पर, विश्वास करते थे। इसलिए पौलुस उन तक सामर्थ का प्रदर्शन करते हुये पहुंचा (प्रेरित. 19:11, 12)।

उपरोक्त तीन उदाहरणों में प्रेरित पौलुस ने स्वयं को अपने सुननेवालों की आवश्यकताओं के साथ जोड़ लिया था।

निष्कर्ष: चाहे हम मुम्बई में उच्च वर्ग के व्यवसायिक व्यक्तियों के बीच सेवकाई कर रहे हैं या जंगल में अशिक्षित ग्रामीण के बीच, हमें उन स्थानिय लोगों के द्वारा समझी जाने वाली भाषा और संस्कृति शब्दों में (परिस्थिति में) सुसमाचार को बताने की क्षमता के लिए परमेश्वर की सहायता मांगना आवश्यक है; अवश्य मांगनी चाहिये।

पाठ 29

मूल-निवासियों में नेतृत्व का विकास

यह और अगला अध्याय डॉ. एस.डी. पोनराज के कलीसिया निर्माण आन्दोलन की कूटनीतियाँ से उद्धरित एवं संक्षिप्त किया गया है। देशी अगुवाई प्रशिक्षण पर अतिरिक्त शिक्षण ''महान आदेश के सिद्धान्त'' में दिया गया है।

परिचय: महान आदेश की पूर्णता का सब से महत्वपूर्ण तत्व मूल-निवासी अगुवों को प्रशिक्षित एवं सुसज्जित करना है। इस अनिवार्य नेतृत्व के बारे में बताने के लिये बाइबल में बहुत कुछ है।

1. स्थानीय नेतृत्व को प्रशिक्षित करने का महत्व
    1. एक कलीसिया स्थापक को नई मण्डलियों में बाहर से अगुवे लाने के प्रलोभन का सावधानीपूर्वक रोकना चहिये। इसके विपरीत, उसे स्थानीय नेतृत्व के विकास पर ध्यान देना चाहिए।
    2. मिशनरी को अपने नये विश्वासियों की क्षमता का पता लगाने के लिए निरंतर सतर्क बने रहना चाहिये, सावधानीपूर्वक भावी अगुवों को चुनना और उन्हें अनवरत् प्रक्रियाबद्ध प्रशिक्षण देना चाहिये।
    3. प्रत्येक स्थानीय मण्डली में कम से कम दो प्रकार के नेतृत्व को प्रशिक्षित और विकसित किये जाने की आवश्यकता है। प्रथम प्राचीन और डीकन्स (सेवक) हैं और वे स्वेच्छा से काम करनेवाले अगुवे हैं।
    4. दूसरे प्रकार का नेतृत्व है सुसमाचार-प्रचारकों और पास्टरों का, जो कि सहायक अगुवे होते है। जैसे जैसे काम बढ़ता जाता है और अधिक मण्डलियों की स्थापना होती है, वैसे वैसे और अधिक प्रगतिशील और अनुभवी अगुवों की आवश्यकता हो सकती है, जैसे कि, संचालक या बिशप, इस प्रकार के नेतृत्व को आवश्यकता पड़ने पर मौजूदा अगुवों में से किसी का उपयोग करते हुए पूरा किया जा सकता है।
    5. नई मण्डली के बनाए जाने के आरंभ से ही निरन्तर एवं नियमित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इसके साथ ही, समय समय पर वरिष्ठ अगुवों के लिए प्रगतिशील प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। जबकि प्रारंभिक प्रशिक्षण मण्डली के सभी रुचि रखनेवाले लोगों को

दिया जाना चाहिए, विशिष्ट सेवकाइयों के लिए प्रगतिशील और विशिष्ट प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए, जैसे कि बच्चों के मध्य, युवाओं के मध्य, और स्त्रियों के मध्य सेवकाई तथा पास्तरीय कार्य और प्रचार कार्य। प्रशिक्षण कार्यक्रम के तरीके और उसमें प्रयोग की जानेवाली पद्धतियों पर गंभीर विचार किया जाना चाहिए।

2. अयाजकीय अगुवाई का महत्व: सुसमाचार प्रचार और कलीसिया स्थापन की परिस्थिति में अयाजक पुरुष, स्त्रियाँ और अयाजक अगुवे एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका को निभाते हैं।
3. अभिषिक्त लोगों के प्रशिक्षण का महत्व: कलीसिया की सभी शाखाएं, अपनी स्थानीय कलीसिया में विशिष्ट जिम्मेवारी को पूर्ण करने के लिये अगुवों को नियुक्त करने हेतु, किसी न किसी प्रकार के अभिषेक या मान्यता की पद्धती को अपनाती है। स्थानीय कलीसिया के उचित कामकाज के लिये मान्यताप्राप्त हुये या ''प्रमाणित किये गये'' अगुवों की आवश्कयता होती है।
4. मूल-निवासी नेतृत्व विकसित करने का प्रेरित पौलुस का नमूना
    1. पौलुस सदा ऐसे लोगों की खोज में रहता था जो उस स्थानीय कलीसिया में उत्तरदायित्व ग्रहण कर सकने के योग्य होंगे- उन लोगों की कलीसिया में जिन्हें उसने अपनी सेवकाई के परिणामस्वरूप मसीह की ओर फिरते देखा था। प्रेरित. 14:23
    2. प्राय: वह बहुत कम समय के लिए ही ठहरता था; परन्तु प्रत्येक समय उस मण्डली से जाने से पहले वह नये विश्वासियों को उसके स्थानीय अगुवों की देखभाल में सौंपने के योग्य होता था। उसके पास कोई भी वेतनप्राप्त प्रतिनिधी या कर्मचारी नहीं था परन्तु इसके विपरीत वह वेतन न पानेवाले अगुवों पर निर्भर रहता था।
    3. बपतिस्मा देना, नये विश्वासियों को निर्देश देना और कलीसिया में अनुशासन बनाये रखना ये उन नये नियुक्त किये अगुवों और डिकनों की जिम्मवारियां होती थीं, जिन्हें पवित्र आत्मा की सेवकाई पर निर्भर रहना सिखाया जाता था। प्रेरित. 20:32
    4. नेतृत्व के प्रशिक्षण के लिये मूल पाठ 2 तीमुथियुस 2:2 है, जहां पौलुस युवा तीमुथियुस को निर्देश देता है: ''और जो बातें तू ने बहुत से गवाहों के सामने मुझ से सुनी हैं, उन्हें विश्वासी मनुष्यों को सौंप दे; जो दूसरों को भी सिखाने के योग्य हों।'' यहां पर पौलुस तीमुथियुस को उन व्यक्तियों को प्रशिक्षण देने के लिये कहता है जो बदले में दूसरों

को प्रशिक्षण देंगे, अर्थात् ''पुनरुत्पादक अगुवों'' को प्रशिक्षण देने का निर्देश देता है।

5. पौलुस ने मात्र दूसरों को निर्देश ही नहीं दिये परन्तु तीमुथियुस, तीतुस और अन्य और भी युवा व्यक्तियों को प्रशिक्षण देने के द्वारा एक आदर्श भी प्रस्तुत किया। इन प्रशिक्षित व्यक्तियों ने अन्य स्थानीय कलीसियाई अगुवों को प्रशिक्षत किया। हम पढ़ते हैं कि तीतुस ने प्रत्येक कलीसिया में प्राचीनों को नियुक्त किया (तीतुस 1:5)।

पाठ 30

नेतृत्व योग्यताएं और विकास

परिचय: (बी.आई.एल.डी.) के जेफ रीड, प्रेरित पौलुस की योग्यताओं को और बाद में उसकी नव-निर्मित कलीसियाओं के लिए अगुवों को विकसित करने की विधियों को देते हैं। प्रत्येक वरिष्ठ पास्टर और मिशनरी को प्रेरित पौलुस के समान योग्यता-प्राप्त होना चाहिये और अपने ''तीमुथियुसों'' अर्थात् अपने से कनिष्ठ/नये अगुवों को प्रशिक्षित करने के लिये उसकी विधियों का पालन करना चाहिये।

1. प्रेरित पौलुस की नेतृत्व योग्यताएं:
    1. <u>आयु:</u> अपनी प्रेरितीय अगुवाई का आरंभ करने के समय पौलुस एक परिपक्व वयस्क, मध्य आयु का था।
    2. <u>अनुभव</u>: आयु और अनुभव साथ-साथ चलते हैं। अपने प्रारंभिक वर्षों में पौलुस व्यवस्था का विद्वान था। अपने परिवर्तन के पश्चात् वह यरूशलेम की कलीसिया में एक शिष्य था और अरब में तीन वर्ष तक था। तत्पश्चात् वह बरनबास की शिष्यता में रहा और अन्ताकिया की कलीसिया में सेवकाई दल का हिस्सा रहा।
    3. <u>पवित्रशास्त्र में प्रवीणता का अध्ययन:</u> उसने पुराना नियम में और मसीह की शिक्षाओं में प्रवीणता पाई। वह अपने समय का एक महान ध र्मशास्त्रज्ञाता (थियोलॉजिसन) था। वह पुराना नियम के पवित्रशास्त्र के वचनों का संदर्भ सहित अर्थपूर्ण अनुवाद करने में सक्षम था (प्रेरित. 22:)।
    4. <u>जीवन की उपलब्धियाँ.</u> 15 से 20 वर्षों में, पौलुस उस समय के यूरोप और एशिया मायनर के जाने-माने जगत में सुसमाचार-प्रचार कर चुका था। जब कि उसने कुछ ही कलीसियाओं की स्थापना की, उसका कलीसिया स्थापन का कार्य अत्यंत कूटनीतिक स्थानों में था।
    5. <u>प्रभावी सेवकाई:</u> प्रेरित पौलुस एक प्रभावी मिशनरी, कलीसिया स्थापक, पास्टर, बाइबल शिक्षक और लेखक था। परमेश्वर द्वारा उसकी सेवकाई को अभिषिक्त किये जाने का प्रमाण इस बात से मिलता है कि लोग उसके प्रचार, शिक्षा और लेखन कार्य को प्रतिउत्तर देते थे।

6. अच्छी गवाही : पौलुस लिखता है, ''मेरे मन की उमंग यह है कि जहां जहां मसीह का नाम नहीं लिया गया, वहीं सुसमाचार सुनाऊं, ऐसा न हो कि दूसरे की नींव पर घर बनाऊं'' (रोमि. 15:20)। पौलुस ने लोगों से उसकी नकल करने को कहा (1 कुरि. 4:15, 16)।
7. आदर्श पारिवारिक जीवन: उसके परिवार के बारे में हम अधिक नहीं जानते, परन्तु वह मसीही परिवार पर प्रभावी शिक्षा दे पाया था -पति और पत्नियों को (इफि. 5:22, 25) और बच्चों को (इफि. 6:1)। मसीही पारिवारिक जीवन के लिए पौलुस का एक उच्च मापदण्ड था।
8. अच्छा चरित्र: पौलुस के लेख प्रगट करते हैं कि वह एक सौम्य, दयालु और अपने सहकर्मियों तथा उसकी सेवकाई के माध्यम से विश्वास में आने वाले लोगों के प्रति दयालु और स्नेही था।
9. ईमानदारी: पौलुस एक ईमानदार व्यक्ति था, जैसा कि उसने सन्हेद्रीन के सम्मुख गवाही दी: ''हे भाइयो, मैंने आज तक परमेश्वर के लिए बिल्कुल सच्चे विवेक से जीवन बिताया है'' (प्रेरित. 23:1)। इफिसुस के अगुवों के लिए, पौलुस ने सभी व्यक्तियों के सम्मुख अपने निर्दोषता की गवाही दी थी (प्रेरित. 20:26, 27)।
10. अच्छा प्रबंधन: प्रेरित पौलुस ने अपने जीवन का—अपने समय, प्रतिभा, वरदानों और सभी स्रोतों का-अच्छा प्रबंधन रखा था। वह जान गया था कि इस जीवन में प्रत्येक वस्तु परमेश्वर के अनुग्रह से प्राप्त हुई है और उसे इन सब का अच्छा प्रबंधक होना है (1 कुरि. 15:9-11)।
11. बलिदान होने को तैयार: पौलुस, मिशन के लिये अपनी बुलाहट को दु:ख उठाने की बुलाहट समझ चुका था। (प्रेरित. 9:15, 16; 2 कुरि. 6:4-7)।

2. महान आदेश को पूरा करने के लिए नेतृत्व विकास (*जेफ रीड के द्वारा शब्दों को तिरछा किया गया है*)
    1. *नेतृत्व प्रशिक्षण मुख्यत: विश्वसनीय व्यक्तियों को धरोहर सौंपना है, न कि उन युवकों द्वारा पूरी की गई कोई शैक्षणिक उपलब्धि जो मात्र मामूली रूप से ही सेवकाई से जुड़े हैं।* इसका अर्थ यह है कि हम नेतृत्व को मात्र प्रमाण पत्रों या डिग्री के आधार पर नहीं आंकते, परन्तु व्यक्ति के चरित्र के आधार पर आंकते हैं। प्रशिक्षण मात्र उन्हीं को दिया जाना चाहिए जिनका जीवन ऐसा नमूना हो जिसका अनुकरण युवा पीढ़ी कर सके।

2. *नेतृत्व प्रशिक्षण में एक लंबा समय लगता है।* पौलुस ने तीमुथियुस को 15 से 20 वर्ष के लंबे समय के संपर्क के दौरान प्रशिक्षित किया था। नेतृत्व विकास में समय लगता है और इसका कोई छोटा रास्ता नहीं है।
3. *नेतृत्व प्रशिक्षण उसी परिस्थिति में होना चाहिए जहां सेवकाई की जानी है।* हमें अपने भावी अगुवों को थियोलोजिकल प्रशिक्षण के लिए भारत से बाहर नहीं भेजना चाहिए। प्रशिक्षण के सभी कार्यक्रम सेवकाई की परिस्थिति में, सेवकाई के स्थल पर होने चाहिए।
4. *नेतृत्व प्रशिक्षण स्वभाव में कलीसिया स्थापन से संबंधित (इक्लेसियोलोजिकल) और मिशन से संबंधित (मिसियोलोजिकल) दोनों ही हैं, और कभी भी कलीसियाओं की स्थापना करने और बहुगुणित करने की कार्य-सूची से बाहर नहीं होने चाहिए।* अगुवों को कलीसिया की परिस्थिति के अन्तर्गत ही, कलीसिया के द्वारा और कलीसिया के लिए, परंतु साथ ही सुसमाचार-प्रचार, कलीसिया स्थापन और मिशन कार्य के उद्देश्य के लिए भी, प्रशिक्षित और विकसित किया जाना चाहिए।
5. *नेतृत्व प्रशिक्षण को, सेवकाई अनुभव, विश्वास में व्यक्तिगत उन्नति और पवित्रशास्त्र के वचनों में प्रवीणता के साथ संतुलित किया जाना चाहिए।* स्थानीय कलीसियाओं के लिये अगुवों को विकसित करने में ये तीनों पक्ष महत्वपूर्ण हैं और प्रत्येक को एक समान महत्व दिया जाना चाहिए।
6. *नेतृत्व प्रशिक्षण स्थानीय कलीसियाओं का उत्तरदायित्व है।* हम बाइबल सेमनरी में अगुवों को प्रशिक्षित कर सकते हैं, परन्तु ऐसा सदैव स्थानीय कलीसिया के साथ घनिष्ट संबंध में होकर ही किया जाना चाहिये। हमें अगुवे को उसकी कलीसिया से दूर हटाना नहीं चाहिये। वह बाइबल स्कूल के प्रति नहीं परन्तु अपनी कलीसिया के प्रति उत्तरदायी है।
7. *नेतृत्व प्रशिक्षण का आंकलन करने वाले और मान्यता देने वाले फॉर्म मुख्य रूप से शैक्षणिक परिपूर्ति पर नहीं परंतु उस व्यक्ति के जीवन और सेवकाई की विश्वासयोग्यता और प्रगति पर केन्द्रित होने चाहिए।* हम एक अगुवे को उसकी शिक्षा में तो असफल होने दे सकते हैं परन्तु जीवन और सेवकाई में उसकी विश्वसनीयता और उन्नति में नहीं। आकलन की कसौटी व्यक्ति का चरित्र होना चाहिए, उसका प्रमाण पत्र नहीं।

पाठ 31

अपने शिष्यों के लिए परमेश्वर की प्रतिज्ञाएं: इफिसियों 1 और 2

1. परमेश्वर ने हमें अपने लेपालक पुत्र होने के लिए चुना है। इफि. 1:4-5
   1.1 वह हमें पवित्र जीवन जीने के लिये बुलाता है। 1थिस्स. 4:7
   1.2 उसने हमें उसकी समानता में होने के लिये पहले से चुन लिया है। रोमि. 8:29-30
   1.3 उसने हमें अपने पुत्र और वारिस होने के लिये चुना है। रोमि. 8:15-17
2. परमेश्वर अपने लोगों के लिए छुटकारे की प्रतिज्ञा करता है। इफि. 1:7-8
   2.1 मनुष्य चुनाव कर सकता है कि वह किस स्वामी की सेवा करेगा, पाप की या आज्ञाकारिता की। रोमि. 6:16
   2.2 कुछ लोग पाप के गुलाम होने का चुनाव करते हैं। 2पत. 2:19
   2.3 मनुष्य स्वंय को या दूसरे को छुटकारा दिलाने के लिये असमर्थ है। भजन. 49:7-9
   2.4 यीशु हमें स्वतंत्र करता है। यूह. 8:36
   2:5 हम परमेश्वर के अनुग्रह से अपने पाप से छुटकारा पा सकते हैं। रोमि. 3:23
   2.6 परमेश्वर हमें दुष्ट से छुड़ाता है। 2 तीमु. 2:25-26
   2.7 उसका उद्धार पाने के लिये हम पूर्णत: अयोग्य हैं, तथापि वह हमें अपनी दया से छुटकारा दिलाता है। तीतुस 3:5
3. **हम पर परमेश्वर के पवित्र आत्मा की छाप है। इफि. 1:13**
   3.1 परमेश्वर की संतान होने के कारण, और परमेश्वर के प्रति अपने गहन आभार और प्रेम होने के कारण, हम एक स्वेच्छिक दास के रूप में उसे अपना जीवन सौंप सकते हैं। व्यवस्था. 15:16-17
   3.2 विजेताओं को वह छिपा हुआ मन्ना और नया नाम लिखा हुआ श्वेत पत्थर भी देगा। प्रका. 2:17
   3.3 परमेश्वर में हमारा आत्मिक रूप से ''खतना'' हुआ है। (परमेश्वर का पवित्र आत्मा हमारे हृदयों पर अपनी छाप लगाता है, उसी शारीरिक

खतने के समान जिसके चिन्ह कुछ मनुष्यों पर रहते हैं।) कुलु. 2:11

4. हमारे पास परमेश्वर की मीरास की प्रतिज्ञा है। इफि. 1:14

4.1 हमें परमेश्वर के महान अनुग्रह के धन की मिरास मिली हुई है। इफि. 1:18

4.2 हम यीशु मसीह के द्वारा परमेश्वर के पुत्र और वारिस हैं। गल. 4:7

4:3 जो परमेश्वर से प्रेम करते हैं वे उसके राज्य के वारिस हैं। याकूब 2:5

5. हमारे लिए परमेश्वर की सामर्थ की प्रतिज्ञा है। इफि. 1:19-20

5.1 पाप का विरोध करने के लिये। भजन. 119:11

5.2 पाप को जानने और प्रकट करने के लिये। मीका 3:8

5.3 परमेश्वर का गवाह होने के लिये। प्रेरित. 1:8

5.4 धर्मी होने के लिये। यशा. 41:10

5.5 हमारी दुर्बलता में उसकी सामर्थ व्यक्त होने के लिये। 2 कुरि. 12:9-10

6. हमारे लिए परमेश्वर के लिये भले कामों की प्रतिज्ञा है। इफि. 2:10

6.1 मसीह ने हमारे लिए अपना जीवन दे दिया, कि उसे महिमा देने के लिये हम भले काम करें। तीतुस. 2:14

6.2 हमें अपने भले कामों की ज्योति को मनुष्यों के सामने चमकने देना है। मत्ती 5:16

6.3 हम अन्य शिष्यों को भले कामों के लिए प्रेरित कर सकते हैं। इब्रानियों 10:24

7. हमारे लिये परमेश्वर के निकट हो जाने की प्रतिज्ञा है। इफि. 2:13

7.1 हम अनुग्रह के सिंहासन के निकट आत्म-विश्वास के साथ जा सकते हैं। इब्रा.4:15-16

7.2 परमेश्वर के निकट आने पर, वह हमारे निकट आता है। याकूब 4:8

8. हमारे लिए परमेश्वर के भवन का भाग होने की प्रतिज्ञा है। इफि. 2:21-22

8.1 परमेश्वर हमें अपने आत्मिक घर में ''जीवित पत्थर'' होने के लिये बनाता है। 1 पतरस 2:5

8.2 इस घर के कोने का पत्थर मसीह है। इफि. 2:20

9. हमारे लिए परमेश्वर का निवास-स्थान होने की प्रतिज्ञा है। इफि. 2:22

9.1 हम परमेश्वर के आत्मा का ''मन्दिर'' हैं। 1 कुरि. 3:16

9.2 हमारी शारीरिक देह परमेश्वर का मन्दिर है। 1 कुरि. 6:19-20

9.3 परमेश्वर हमारे साथ रहता है और हमारे मध्य चलता है। 2 कुरि. 6:16

पाठ 32

विश्वासी की पवित्रता: परमेश्वर की मीरास–1

परिचय: इफिसियों 4:21-24

1. मसीही ढांचे के अंतर्गत ''पवित्रता'' शब्द अनेकार्थी है (अस्पष्ट है/उसके एक से अनेक अर्थ है)।
2. पवित्रता के बारे में कई गलतफहमियाँ हैं: उदाहरण के लिए, केल्विनवादी और वैसलीयन इसके सही सारांश से असहमत हैं।
3. दिये गये पदों में सक्रिय क्रियापदों पर ध्यान दें: (इन पदों में कुछ कर्मवाच्य क्रियापद भी हैं।)
   - अपने पुराने मनुष्यत्व को ''उतार डालो''
   - नये मनुष्यत्व को ''पहन लो''
   - ''नये बनते जाओ''

1. पवित्रता की विशेषताएं

क. पवित्रता उद्धार का <u>परिणाम</u> है। प्रेरित. 15:11

1. यह उद्धार की शर्त नहीं है: हम जैसे हैं वैसे ही परमेश्वर के पास आ सकते हैं।
2. यह परमेश्वर की उपस्थिति का फल, उत्पादन, परिणाम है।

ख. पवित्रता धार्मिकता के पीछे <u>का उद्देश्य</u> है। 1तीमु. 6:11

1. पवित्रता अनन्तकालिक गुण है–अस्थायी नही।
2. संसार जिन बातों को गुण कहता है वे हैं: आत्म-सम्मान, परिपक्वता, अनुशासन, प्रशंसा

ग. पवित्रता परमेश्वर की समानता में होने का <u>तरीका</u> है। (परमेश्वर के समान होने की इच्छा रखना भला है।) इफि. 5:1

1. परमेश्वर के समान होने की कुछ अनुचित इच्छाएं।

अ. आदम और हव्वा ने परमेश्वर के समान होने के लिये स्वार्थी इच्छा में होकर पाप किया। उत्प. 3:6

ब. बहुत से लोग पाप में रहना और दण्ड से बचना चाहते हैं।

स. बहुत से परमेश्वर से स्वतंत्र रहना चाहते हैं।

2. पवित्रता की खोज करना परमेश्वर की समानता में होने की खोज करना है। गल. 2:20

अ. यीशु इसलिये आया कि लोग नि:स्वार्थ भाव से परमेश्वर के समान (पवित्र) हो सकें।

ब. यीशु ने शत्रु शैतान के हाथों से एक महिमामयी छुटकारा दिलाया।

स. पवित्रता परमेश्वर पर स्वेच्छा से निर्भरता की ओर लेकर जाती है।

1. इसमें स्वेच्छा से समर्पण किये जाने की अभिव्यक्ति होती है।

2. इसमें धार्मिकता और पवित्रता में होकर परमेश्वर की स्वेच्छा से सेवा किये जाने की अभिव्यक्ति होती है।

ii. पवित्रता का माप और बनावट

क. पवित्रता को मापने वाली छड़ें

1. प्रकाशन

अ. यीशु मसीह – परमेश्वर का चरित्र (भजन. 11:9)

ब. बाइबल – परमेश्वर का विवरण (2 कुरि. 1:12)

ग. अंत:करण–परमेश्वर की व्यवस्था हमारे हृदयों पर लिखी हुई है।

2. सहभागिता: मनुष्य की परमेश्वर से निकटता

अ. खड़ी, सीधी: मनुष्य परमेश्वर के साथ

ब. समानान्तर, बराबरी की: मनुष्य मनुष्य के साथ पारस्परिक विषयों में (1 यूह. 1:7)

3. सहयोग: मनुष्य और परमेश्वर के बीच कार्यकारी संबंध

अ. खड़ा, सीधा: मनुष्य परमेश्वर के साथ- उसकी ईश्वरीय योजना में (इफि. 2:21-22)

ब. समानान्तर, बराबर का: मनुष्य परमेश्वर के साथ– अपनी मानवीय दशा में (प्रेरित. 1:14, 2 तीमु. 1:8)

ख. पवित्रता (सक्रिय प्रेम) के दो घटक

1. अनुग्रह - <u>प्रेम</u> अनुग्रह के पीछे की प्रेरणा है। 1यूह. 4:8-10

2. सत्य – <u>क्रिया</u> पर सत्य से नियंत्रण होना चाहिए; परमेश्वर सत्य के द्वारा शासन करता है। भजन. 26:3

पाठ 33

विश्वासी की पवित्रता: परमेश्वर की मीरास-2

iii. पवित्रता शब्द के बारे में गलतफहमियाँ:

क. पवित्रता का अर्थ हमारे सभी पापों से या पाप की शक्ति से छुटकारा मिल जाना नहीं है।

1. पवित्रता क्या नहीं है: पवित्र होने का (या पवितत्रता प्राप्त होने का) अर्थ यह नहीं है कि हम ''पाप रहित'' है।

2. पवित्रता क्या है:

अ. पवित्र होने का अर्थ यह है कि अब हम पर पाप का कोई नियंत्रण नहीं है।

आ. पवित्र होने से हमारे लिये अब यह आवश्यक नहीं रह जाता कि हम पाप करे ही; अब हम में भला करने की इच्छा है।

(1) हम में आज्ञाकारीता है - यदि हम मसीह के प्रति समर्पित हैं तो

(2) हम में भला करने की इच्छा है - यदि हम भला करना चाहते हैं तो

इ. जब हम पवित्र नहीं होने का चुनाव करते हैं तो: यह या तो विद्रोह है (हम मसीह के प्रति समर्पित होना नहीं चाहते) या फिर उदासीनता (हम भला करना नहीं चाहते)।

ख. न्याय की गलतियों से छूट जाना पवित्रता नहीं है; यह न्याय को काम में लाये जाने की आवश्यकता से छुटकारा मिल जाना है।

1. पवित्र होने का अर्थ यह नहीं है कि हम फिर से गलतियां नहीं करेंगे।

2. जब हम पवित्र हैं तो हमारे भीतर का मसीह का चरित्र हमें दूसरों के प्रति उसके अनुग्रह से भर देता है।

ग. पवित्रता का अर्थ अभिलाषाओं से छुटकारा मिल जाना नहीं है, परंतु असफल होने की निर्बलता से छुटकरा मिलना है।

1. इसका यह अर्थ यह नहीं कि हम फिर कभी परीक्षा में नहीं पड़ेंगे

(या अभिलाषाएं नहीं आयेंगी)

2. इसका यह अर्थ यह नहीं कि हम परीक्षा से/अभिलाषा से पराजित नहीं होंगे।

घ. पवित्रता का अर्थ बीमारी और देह की दुर्बलता से छुटकारा नहीं है; यह उस बीमारी से स्वतंत्रता है जो पाप और अनाज्ञाकारिता में रहने के कारण आने की संभावना रही होती।

1. आवश्यक नहीं कि बीमारी व्यक्तिगत पाप का ही परिणाम है (जबकि ऐसा हो सकता है)।
2. पवित्र होने पर भी हम बीमार हो सकते हैं, अपाहिज भी हो सकते हैं, परंतु परमेश्वर का अनुग्रह जो हम में है वह हमें बीमारी की निराशा पर आत्मिक विजय देगा।

ड. पवित्रता संघर्ष से छुटकारा नहीं है; यह आत्मिक पराजय से छुटकारा है।

च. पवित्रता असफलता की संभावना से छुटकारा नहीं है; यह असफलता की निश्चितता से छुटकारा है।

1. पवित्र होने का अर्थ यह नहीं है कि हम सदा ही जो कुछ सही या अच्छा है उसी का चुनाव करेंगे।
2. पवित्र होने पर भी हम में स्वतंत्र इच्छा होती है, जिस में पाप के मार्ग को चुनने और परीक्षा में गिरने की क्षमता होती है। तथापि अब हमारे पास, गिरने से बचने के लिये परमेश्वर की सामर्थ का सहारा होता है।

छ. पवित्रता ''अन्तिम गंतव्य'' नहीं है जिसके बाद हम आगे व्यक्तिगत विकास को अनुभव नहीं कर सकते; यह व्यक्तिगत विकास के लिए परमेश्वर की सामर्थ को उपलब्ध कराती है।

1. परमेश्वर की पवित्रता होने का अर्थ यह नहीं कि हम एक ऐसे स्थान पर पहुंच गए हैं जिसके बाद और बढ़ नहीं सकते।
2. परमेश्वर की पवित्रता हमें आत्म–अनुशासन और सही आदतों की ओर लेकर जाती है, जो बदले में हमें अच्छे स्वास्थ्य और बढ़ोतरी की ओर लेकर जातीं हैं।

ज. पवित्रता शिखर पर पहुंच जाना नहीं है; यह एक प्रगतिशील चढ़ाई है।

1. पवित्रता ऐसा शिखर नहीं है जहां से हम गर्व के साथ ''पाने लेने'' या ''पहुंचने'' का दावा कर सकेंगे, कि और आगे जाना जारी

रखने के लिये कोई उच्च मार्ग नहीं है।

2. परमेश्वर की पवित्रता पूर्ण और संपूर्ण ईश्वरीय नम्रता की ओर लेकर जाती है।

   अ. यह इस जागरूकता को लाती है कि हम अपने में पाई जाने वाली उसकी शुद्धता के योग्य नहीं हैं।

   ब. परमेश्वर की पवित्रता में हम उसकी महिमामयी पवित्रता की रोशनी की तुलना में अपने हृदयों की पापी दशा से शर्मिन्दा होते हैं।

   स. परमेश्वर की पवित्रता में, हम हमारी भ्रष्टता और कोई भी अच्छा फल लाने के लिये आवश्यक उस पर की निर्भरता को जान पाते हैं।

   द. *यह पूछने के बजाय कि हम पवित्रता के शिखर पर कैसे पहुंच सकते हैं, हम यह पूछना चाहते हैं कि हम मसीह के प्रति कैसे समर्पित हो सकते हैं जिससे वह हमारे जीवनों के द्वारा ऊँचा* उठाया जा सकें।

निष्कर्ष:

1. पवित्रता परमेश्वर से प्राप्त विरासत है; परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हमें पवित्र होने के संबंध में निष्क्रिय रहना है।
2. हमें परमेश्वर की पवित्रता का दावा करना है; हमें अपनी इच्छा का उपयोग करते हुये इसे अपनाना है। फिलि. 3:12-14
3. हमें बुलाने वाला पवित्र है और वह कहता है, ''पवित्र बनो क्योंकि मैं पवित्र हूं।'' 1 पतरस 1:15, 16
4. हम पवित्र याजकों का समाज ... एक पवित्र जाति हैं। 1 पतरस 2:5-9
5. हमें ''पवित्र और धार्मिक जीवन जीना है'' जबकि हम ''परमेश्वर के दिन की ओर और **उसके जल्द आने**'' की बांट जोहते हैं। 2 पत. 3:11-12

पाठ 34

विश्वासी की पवित्रता: परमेश्वर का वरदान

परिचय

1. इस अध्ययन का मुख्य विषय इस वर्तमान जीवन में परमेश्वर की ओर से पवित्रता की भेंट है।
2. कुछ धार्मिक समूह सिखाते हैं कि पवित्रता का जीवन एक विशिष्ट समूह के लिए आरक्षित है।
   - रोमन कैथोलिक सिखाते हैं कि मृतकों को ही संत घोषित किया जा सकता है।
   - बहुत से प्रोटेस्टेंट इस संभावना से इंकार करते हैं कि हम इस पृथ्वी पर रहते हुए पवित्रता प्राप्त कर सकते हैं। उनका मानना है कि मसीह ने हमें पृथ्वी पर पवित्र रहने की क्षमता नहीं दी है।
3. परन्तु बाइबल कहती है कि हमें ''निर्दोष और भोले होकर टेढ़े और हठीले लोगों के बीच परमेश्वर के निष्कलंक संतान बने'' रहना है।'' फिलि. 2:15

i. चरित्र की पवित्रता संभव है। रोमि. 8:29
   क. यह परमेश्वर की इच्छा है कि उसकी संतान उसके पुत्र की समानता में रूपान्तरित हो जाये। रोमि. 12:1-2
   ख. धर्मी ठहराया जाना एक आरंभ है, अन्त नहीं।

ii. यीशु पवित्रता को संभव बनाने के लिए संसार में आया। यूह. 1:29
   क. यह परमेश्वर की इच्छा है कि उसके लोग पाप की सामर्थ से स्वतंत्र हों। 2 कुरि. 5:21
   ख. अपनी मृत्यु और पुनरुत्थान के द्वारा उसने पाप की सामर्थ को तोड़ दिया। रोमि. 6:2, 11, 23; इब्रा. 9:26
   ग. मसीह के द्वारा हमें धार्मिकता, पवित्रता और छुटकारा प्राप्त हो सकता है। 1 कुरि. 1:30

iii. परमेश्वर का आत्मा विश्वासी को पाप और मृत्यु की व्यवस्था पर विजयी होने में समर्थ करता है। रोमि. 8:1-3

क. ''व्यवस्था'' शब्द के लिए बाइबल के दो अर्थ हैं।

1. आत्मा की व्यवस्था–अनिवार्य सिद्धान्त जो यह बताता है कि धार्मिकता क्या है और क्या नहीं है।
2. मूसा की व्यवस्था– सीनै पर्वत पर मूसा को परमेश्वर द्वारा दी गई विधि सम्मत संहिता।

ख. आत्मा की व्यवस्था मुझे पाप और मृत्यु की व्यवस्था से स्वतंत्र करती है।

iv. उन सभी आत्मिक शक्तियों को पराजित कर दिया गया है जो पवित्रता के विरुद्ध है। कुलु. 1:12-14

क. जब हम मसीह के प्रति समर्पित हैं तब हम एक पराजित शत्रु से संघर्ष कर रहे होते हैं।

ख. हम मसीह, हमारे उस प्रभु के पीछे चलते हैं जिसने कभी कोई लड़ाई नहीं हारी है।

ग. गिर जाने पर हमें पता होता है कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि हमने उसके आदेशों का पालन नहीं किया।

घ. मुझ से अभी भी पाप हो जा सकता है, परंतु अब मैं पाप का गुलाम नहीं हूं कि उसकी अधीनता में पाप में बना रहूं।

v. प्रत्येक विश्वासी में पवित्रता के लिये अंर्तनिहित सामर्थ है। 1 कुरि. 3:1-3

क. कुछ "संत" पहले शारीरिक थे। 1 कुरि. 6:11

ख. जब एक व्यक्ति मसीह को ग्रहण करता और अपनी आंखें उस पर लगाता है जब वह ''शुद्ध'' हो जाता है।

ग. परन्तु "संत" गिर भी सकते हैं।

घ. पवित्रता के लिए आवश्यक प्रत्येक वस्तु मसीह यीशु में हमारी है।

vi. हम परमेश्वर का मन्दिर हैं, पवित्र आत्मा से भरपूर और पवित्र (शुद्ध) हैं। 1 कुरि. 3:16-17

क. यह वर्तमान समय की सच्चाई है, न कि केवल भविष्य की आशा। 2 कुरि. 6:16

ख. जिसमें परमेश्वर का आत्मा है वह परमेश्वर का है; जिसमें आत्मा नहीं वह संसार का है। रोमि. 8:9

ग. हम जो कि परमेश्वर का मन्दिर हैं, हमारी जीवन-शैली इस संसार के पाप में रहने वाले लोगों से अलग होनी चाहिए। 2 कुरि. 6:17

vii. विश्वासी के लिये उपलब्ध साधन असीमित हैं। कुलु. 2:8-9

क. मसीह में हम इस संसार के मिथ्या एवं भ्रामक तत्वज्ञानों से स्वतंत्र हैं।

ख. मसीह में होकर हमें पुराने और पापी स्वाभव पर पूरा अधिकार और शक्ति प्राप्त है।

निष्कर्ष

1. नया नियम यह कभी नहीं सिखाता कि इस पृथ्वी पर हम ''त्रुटिरहित'' होंगे, परन्तु वह हमें यह सिखाता है कि हम ''निर्दोष'' हो सकते हैं।
2. ''निर्दोष'' होने का अर्थ ''त्रुटिरहित'' होना नहीं है।
3. उदाहरण: एक छोटे बच्चे ने अपने पिता को पत्र लिखा:
   - पत्र शब्द तथा व्याकरण की गलतियों, बेकार लिखाई आदि से भरपूर था। तकनीकी रूप से यह त्रुटिवाला था, ठीक वैसे ही जैसे हम कभी कभी परीक्षा में पड़ने के कारण आत्मिक रूप से त्रुटिग्रस्त हो सकते हैं।
   - परन्तु पत्र के पीछे का उद्देश्य शुद्ध था, और बच्चे के द्वारा व्यक्त प्रेम सच्चा था। इस भाव में, पत्र निर्दोष था, ठीक वैसे ही जैसे हम मसीह की क्षमा के द्वारा निर्दोष बनते हैं।
4. हम, वैसे ही जीवन जीने के द्वारा जैसा पिता पर निर्भर रहने वाला एक छोटा बालक जीता है, पवित्र आत्मा के निर्देशन में मसीह का अनुसरण करते हुये, पवित्र बन सकते हैं,

पाठ 35

पवित्रता : परमेश्वर की बुलाहट
इब्रानियों 5:11-6:8

परिचय:

1. हमें 'धर्मी ठहराए जाने' और 'पवित्र किए जाने' के बीच अन्तर करना अवश्य है।
2. धर्मी ठहराया जाना: उसका वरदान, उसका बलिदान, उसके द्वारा किया गया मेल, उसके द्वारा धोया जाना है।
3. पवित्र किया जाना: मेरी भेंट, मेरा बलिदान, मेरा पुनर्मेल, मेरी सफाई।
4. बहुत से विश्वासी पवित्र जीवन जीये बिना धर्मी ठहराए जाने की आशीषों का दावा कर रहे हैं।

1. परमेश्वर अपनी सन्तान को आत्मिक परिपक्वता के लिए बुलाता है। इब्रानियों 5:11-14

   क. अपरिपक्व मसीही उन बच्चों के समान होते हैं जो केवल दूध पी सकते हैं।

      1. कुछ मसीही अपने विश्वास और अपने जीवन की पवित्रता में कभी नहीं बढ़ते।
      2. जिस प्रकार छोटे बच्चे निर्बल होते और दूसरों पर निर्भर होते हैं, तथा कठिनाइयों में खड़े रह पाने में कमज़ोर रहते हैं; उसी प्रकार कुछ मसीही आत्मिक रीति से निर्बल रह जाते हैं; वे कभी आत्मिक परिपक्वता में नहीं बढ़ पाते।

   ख. परिपक्व मसीही उन वयस्कों के समान होते हैं जो ठोस भोजन खाते हैं।

      1. परिपक्व मसीही आत्मिक ठोस भोजन को ''पचाने'' के योग्य होते हैं: वे धार्मिकता में और पवित्रता में जीते हैं, और वे अन्य कमज़ोर भाइयों की सेवा करने में समर्थ होते हैं।
      2. परिपक्व मसीही परीक्षाओं और शैतान के हमलों का सामना करने में समर्थ होते हैं।

ii. परमेश्वर अपनी संतान को आत्मिक वृद्धि के लिए बुलाता है। इब्रानियों 6:1-3

क. हमें प्राथमिक शिक्षाओं को छोड़ना है।

1. ''प्राथमिक शिक्षाओं'' में न रहने के कुछ अच्छे कारण हैं।
2. आरंभिक सत्य केवल आरंभ या नींव ही होते हैं। जब एक बार नींव डाली गई तो उसके बाद हम एक सुनिर्मित आत्मिक घर की दीवारों को बनाने का काम कर सकते हैं।

ख. हमें ''परिपक्वता में बढ़ना'' है।

1. हमें आत्मिक रीति से वृद्धि करना और जो सिद्ध है, जिसे हमने पाया है, उसकी ओर बढ़ना है:
   अ. नये जीवन का आनन्द
   ब. जीवन की ओर ले जानेवाले काम
   स. नि:स्वार्थता का वरदान
   द. शुद्धता का जीवन
   न. चंगाई की सेवकाई
   प. दोषियों तक पहुंचना
2. जब हम ने नींव डाल ली है (इसकी समस्त आशीषों के सहित) तब हम क्रूसित जीवन की ओर आगे बढ़ सकते हैं।

iii. परमेश्वर अपनी संतान को विश्वासयोग्यता के लिए बुलाता है। इब्रानियों 6:4-8

क. पुराने जीवन में गिरने के पाप के परिणाम गंभीर होते हैं।

ख. जब कोई विश्वास से अलग होकर मसीह की ओर लौटता है तो वह एक भाव में यीशु को पुन: क्रूस पर चढ़ा रहा होता है।

ग. मात्र वही प्यासी भूमि, जो परमेश्वर के लिए उपयोगी फसल लाती है, आशीषित होगी।

निष्कर्ष:

1. तुम्हें बुलानेवाला पवित्र है और वह कहता है ''पवित्र बनो क्योंकि मैं पवित्र हूं।'' 1 पतरस 1:15, 16
2. तुम पवित्र याजकों का समाज ... पवित्र जाति हो। 1 पतरस 2:5, 9
3. पवित्र और भक्तिपूर्ण जीवन बिताना तुम्हारा कर्तव्य है। 2 पतरस 3:11

पाठ 36 - महान आदेश और मसीह की वापसी
मत्ती 24:14

परिचय: यीशु के द्वारा अपने शिष्यों को दिया महान आदेश कब पूरा होगा? मत्ती 24:14 में, यीशु हम से कहता है, ''राज्य का यह सुसमाचार सारे जगत में प्रचार किया जाएगा, कि सब जातियों पर गवाही हो, तब अन्त आ जाएगा।''

1. यीशु ने कहा कि हमें इस संसार की सभी जातियों में एक गवाही के रूप में राज्य के सुसमाचार का प्रचार करना है, तब अन्त आ जाएगा। मत्ती 24:14
    1. परमेश्वर की संतान के लिए स्वर्ग में यीशु के साथ अनन्त जीवन की महिमामयी प्रतिज्ञा है। प्रका. 24:14
    2. परन्तु इससे पहले कि हम अपने अन्तिम प्रतिफल को प्राप्त करें, परमेश्वर ने हमें कार्य दिया है। यह कार्य उसके प्रेम और उद्धार को सभी लोगों, कुलों और राष्ट्रों तक ले जाने का है। मत्ती 28:19-20
2. अब तक कितनी जातियाँ (जनसमूह) परमेश्वर के राज्य की गवाही को प्राप्त करने के लिए बचे हुये हैं?
    1. जोशुआ परियोजना के अनुसार (www.joshuaproject.org) आज संसार में लगभग 7000 अनपहुंचे जन समूह हैं। ये समूह संसार के सभी लोगों का लगभग एक तिहाई हैं।
    2. जोशुआ परियोजना के अनुसार आज भारत में 2,605 जन समूह हैं, जिनमें से 2,338 अनपहुंचे हैं। (''अनपहुंचे'' अर्थात् ऐसे समूह जिन में प्रचार कर सकने वाले मसीहियों की संख्या 2 प्रतिशत से भी कम होती है।)
    3. आज भारत में, किसी भी अन्य देश की तुलना में, सब से अधिक अनपहुंचे जन समूह हैं।
3. शुभ समाचार यह है कि हम, परमेश्वर की सहायता से, सुसमाचार को लेकर सारे संसार तक पहुंचने के अपने प्रयासों में बड़ी प्रगति कर रहे हैं।
    1. 1000 वर्ष पहले, सारे संसार में प्रत्येक मसीही पर 270 अविश्वासी थे।

2. 500 वर्ष पहले, सारे संसार में प्रत्येक मसीही पर 85 अविश्वासी थे।
3. 100 वर्ष पहले, सारे संसार में प्रत्येक मसीही पर 21 अविश्वासी थे।
4. 40 वर्ष पहले, सारे संसार में प्रत्येक मसीही पर 13 अविश्वासी थे।
5. 2010 में सारे संसार में प्रत्येक मसीही पर मात्र 7.3 अविश्वासी थे।

4. परन्तु अभी भी बहुत से हैं जिन्होंने यीशु के प्रेम और उद्धार के शुभ समाचार को अब तक नहीं सुना है।
   1. संसार भर में 1.26 अरब लोगों वाले 3,300 अनपहुंचे मुस्लिम जन समूह हैं।
   2. 2,400 अनपहुंचे हिन्दु जन समूह हैं, जो अधिकांशत: भारत में है, 86 प्रतिशत जनसंख्या के साथ!
   3. संसार भर में 1,200 प्रजातीय-धर्म समूह हैं (लोगों की 166 करोड़ संख्या वाले), 700 बौद्ध समूह (लोगों की 276 करोड़ संख्या वाले) और 400 के लगभग अन्य जन-समूह (155 करोड़ लोगों वाले) हैं।
5. महान आदेश की प्रगति को धीमा करने वाली एक और समस्या यह है कि बहुतेरे मसीही कार्यकर्ता उन्हीं क्षेत्रों और जनसमूहों में सेवकाई कर रहे हैं जिनमें पहले से प्रचार किया जा चुका है।
   1. प्राय: ऐसा कहा जाता है कि मसीही कार्यकर्ताओं (पास्टरों, मिशनरियों आदि) की 9/10 संख्या, संसार की मात्र 1/10 जनसंख्या के बीच सेवकाई कर रही है। आवश्यकता इस बात की है कि अधिकांश कार्यकर्ता विश्व की पहले से सुसमाचार सुन चुकी 1/10 जनसंख्या को छोड कर कम प्रचार किये 9/10 क्षेत्रों में जायें।
   2. दक्षिण भारत और उत्तरी-पूर्व भारत के बहुत से राज्यों में अच्छी तरह से प्रचार किया गया है, परन्तु उत्तर भारत के बहुत से क्षेत्रों में कुछ ही मसीही हैं। उत्तर भारत में कुछ भारतीय मसीही सेवकाई कर रहे हैं परन्तु इनकी संख्या को बढ़ाने की आवश्यक है।
   3. परमेश्वर के उद्धार के संदेश को कौन 2,605 भारत के अनपहुंचे जन समूहों तक लेकर जाएगा? इन अनपहुंचे जन-समूहों के बीच जाकर कौन रहेगा?
6. बाइबल कहती है ''जिसने मुझे भेजा है, हमें उसके काम दिन ही दिन में करना अवश्य है; वह रात आनेवाली है जिसमें कोई काम नहीं कर सकता है।'' यूहन्ना 9:4
   1. परमेश्वर ने हमें, उसकी सन्तानों को, एक कार्य – महान आदेश - पूरा

करने के लिए दिया है, कि उसके प्रेम और उद्धार को प्रत्येक भाषा, व्यक्ति, कुल और जाति तक लेकर जाएं। लूका 24:47, प्रका. 5:9

2. परन्तु हमारा कार्य तब तक पूरा नहीं होगा – और मसीह तब तक नहीं लौटेगा - जब तक कि सभी जातियाँ (राष्ट्र) उसके सुसमाचार के शुभ संदेश को न सुन लें।

7. हमारे पास एक महिमामयी दिन है जिसकी ओर हमें देखना है, जब यीशु मसीह अपनी दुल्हन (कलीसिया – अपनी सारी संतान) को स्वर्ग ले जाने के लिए लौटेगा, ताकि वे उसके साथ दीप्तिमान उपस्थिति में अनन्तकाल तक रहें।। उस दिन हम प्रत्येक जाति, कुल, लोग और भाषा में से लिये गये लोगों के साथ मिलकर मेम्ने की आराधना करेंगे। **हालेलूय्याह!!!** प्रका. 7:9